





ॐ -म् भूर्भुव स्व । तत्सवितुर्वरेण्य भर्गो  
देवस्य धीमहि । धियो यो न प्रचोदयात् ॥



## प्रभु-भक्ति

( मशोधित तथा पण्डित संरक्षण )

लेखक

सुशहालचन्द्र

प्रधान, आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पञ्जाब, सिध, बहोचिस्तान, लाहौर ।

मचालक—दैनिक मिलाप तथा हिन्दी मिलाप लाहौर ।

११४ —

बीर विराट् प्रम  
अरर मर - एरी मे  
लीर ।

प्रकार—

सा • कर्तोगम अपिप्यता,

महात्मा ईमरात्र पैरिह-साहित्य-विभाग  
व्याय प्रादेशिक प्रनितिपि ममा पञ्चाह मिय्य पलोचिरठानि  
साहीर ।

## समर्पण

क्या समर्पण करू ? कुल्ल हो मेरे पास  
 तत्र तो । मेरे पास तो कुल्ल भी नहीं ।  
 मेरा शरीर भा तो मेरा नहीं, यह भा तो  
 तेरा ही मन्दिर है । फिर क्या अर्पण करूँ  
 मेरे प्रियतम ! क्या यह विचार—माला ?  
 क्या यह मेरी है ? प्रभु तू जानता है कि यह  
 तेरा ही कृपा का प्रसाद है, फिर यह तेरा ही  
 प्रसाद तुझे समर्पण करने में मेरा क्या  
 लगता है—

मेरा मुझको कुछ नहीं,  
 जो कुछ है सब तोर ।  
 तेरा तुझको सौपते,  
 क्या लागत है मोर ॥

स्वीकार कीजिए इस अपने आपको—

सेन्ट्रल जेल, गुलबर्गा, }  
 पहली वैशाख, १९६६ }

तेरे भक्तों की चरण-रज,  
 —खुशहालचन्द



# उपहार

---

विदेव व शृष्टुदि ह्यमाच । कर्षे  
कच नी पुमे पुञ्चरा चाप उनी सिद्य मे  
सम्यन ह्यारी डेर तुव ।

—◆—  
सिदेव पुत्रान् प्रति वो ह्यस्त ।  
सिना वन कर ह्य पुनी को प्पार कर ।

—◆—  
कञ्चरास्ये सत्ये स्वाम ।  
ह्य मेरी मित्रस्य मे कनी पूरे व हो ।

—◆—  
वेवस्तु परश्वरितं शुभा  
स्य वन सिधं नस्येननीडम् । वस्तु ॥  
'हानी पुन्य कश्च स्य मद्य को ह्यन  
को पुञ्च मे सिना ह्यया रेकस्य है

---

## क्रम

विषय

पृष्ठ

- १ प्रस्तावना—( श्री पूज्य महात्मा नारायण स्वामी जी ) १
- २ राम कहानी—वेग रुदन, वेद-नाता की गोदी में, प्रभु भक्ति की ओर । १३
- ३ अमार-ममार—रानी का बुलबुला, पत्थरों से भरी नदी पार, “भोगा न भुहा,” “तेन न्यहेन” तैरने और डूबने वाला क्रिश्तियां, “सुमरिन कर मन ओ३म् नाम” । १७
- ४ परमगति कैसे मिलेगी— २६
- ५ भगवान् का मन्दिर—रास्कलि और वाधव की कथा, देवताओं का किला, मन्दिर की सफाई, नादी-शुद्धि, मन की शुद्धि, प्राणचर्य । ३१
- ६ प्रभु-भक्ति की विधि— ४३
- ७ मन की बात—वश में करने के साधन, पहला साधन-ज्ञान, दूसरा-धुरे सकल्पों की निवृत्ति, कड़ी निगरानी, सकल्प के संस्कार को धोना, तीसरा-सत्सङ्ग, चौथा-स्वाध्याय । ५३
- ८ मन की निर्बलता— ७५



६. लमक अध्याय—	
१ लमक पत्र—	५
११ मेरा शत्रु—मेरा मित्र—	६३
१८ मत्त की पुस्तक—	६
१३ मत्त की बात मगधाम् से—	१
१४ प्रतीक्षा इस—	१११
१५ भक्ति के विषय—	११
१६ श्री शक्ति और भक्ति—	१११
१७ मत्तों के लिए उपबोगी बातें—	१६
१८ मत्तों के भजन—	१

---





## प्रस्तावना

एक विद्वान् का कहना है कि मनुष्य को अपना जीवन ससार में इस ढङ्ग से व्यतीत करना चाहिये कि जब वह दुनिया

को छोड़े तो दुनिया का जितना हर्ष-समुदाय है, जगत् के चलाय का जितना जोड़ है, उसमें कुछ वृद्धि कर के जाना चाहिये। यदि हम वृद्धि करके जाते हैं तो समझ लो कि हमने धर्म का जीवन व्यतीत किया, परन्तु यदि हम दुनिया की हर्ष की मात्रा को कम और शोक की मात्रा बढ़ाकर दुनिया को छोड़ते हैं, तो सभी स्वीकार करेंगे कि हमने धार्मिकता का जीवन व्यतीत नहीं किया। धार्मिक जीवन व्यतीत करने के लिये आवश्यक है कि उसकी तय्यारी की जाय। कोई काम तय्यारी किये बिना नहीं हुआ करता, इसलिये उसकी तय्यारी करनी ही होगी। तय्यारी का उपाय यह है कि एक मनुष्य की हैसियत से हमें सोचना चाहिए कि हमारे कर्त्तव्य क्या हैं। यदि हम उन्हें समझकर उन्हें पूरा करने का यत्न करेंगे, तो यह, न केवल तय्यारी होगी अपितु तय्यारी के साथ 'हर्ष की मात्रा में वृद्धि' इस उद्देश्य की पूर्ति का क्रियात्मक साधन भी होगा।

**मनुष्य के कर्त्तव्य—**

मनुष्य के कर्त्तव्य सक्षिप्त रीति से यदि कहा जाय तो तीन भागों में विभक्त हो सकते हैं। वे विभाग ये हैं—

१ मनुष्य को अपना मनुष्य बनने के लिए, अपने सम्बन्ध में क्या करना चाहिये ।

२. दूसरे प्राणियों के प्रति क्या क्या कर्तव्य हैं ।

३ ईश्वर के सम्बन्ध में उस क्या करना चाहिये ।

इन्हीं को दूसरे शब्दों में (१) शारीरिक, (२) सामाजिक, (३) और आत्मिक उन्नति कहते हैं । कर्तव्य के इन विभागों का कुछ विवरण देना उचित है, जिससे सभी को कुछ ध्यान हो सके—

**कर्तव्य का पहला विभाग—**

**पहला कर्तव्य—**इस विभाग में मनुष्य को अपने सम्बन्ध में क्या करना चाहिये इस पर विचार करना होगा । इन्हीं का यहाँ संक्षिप्त विवरण दिया जाता है—(१) पहला कर्तव्य, अपनी इन्द्रियों को बलवान् बनाना है । मनुष्य का बाह्य स्तूल-शरीर पाँच स्रिण तक इन्द्रियमय है । फलतः इन्द्रियों को बलवान् बनाने के कर्तव्य पर हुए कि बाह्य शरीर को बलवान् बनाना । शारीरिक-बल प्राप्त करने की प्रत्येक को इतनी चिन्ता रखनी थी कि चार आश्रमों में से पहला आश्रम में विद्याभ्यसन के सिवा अन्यत्र के द्वारा अपने को बलवान् बनाना मुख्य कर्तव्य था । इस युवा की मातायें यदि कुछ निर्बल सम्पन्न पैदा हो जाय तो उन्हें अपने शिबे बाँटकर समझना थी । महाभारत में एक जगह आया है कि ज्ञान श्रुति जिनमें अहम्बुद्धि नाम बाँधी एक श्रुतिवत् भी थी यात्र कर रहे थे । एक सरोवर से कर्मण के डंठल छोड़ कर उन्होंने एक जगह गये परन्तु उन्हें वहाँ से कोई छत्र न गया । जब ल जाने वाछा कोई बिल्ली नहीं दिया तो फिर एक दूसरे पर सम्बैठ होने पर वह ठहरा कि प्रत्येक अपने को निर्वोप सिद्ध करने के लिये कर्म लाये । उस मौके पर वही अहम्बुद्धि की कर्म पर थी—“अमोघशरीर-सुरात्तु विद्वत्त्वं करोति च । अर्थात् जो पाप माता को अनाचार करवे और निर्बल सम्पन्न पैदा करने से जगह है, वही उसको छोटे

जिसने इन ढठलों को चुराया हो। स्पष्ट है कि उस समय-मातयें निर्बल सन्तान पैदा करने को, अनाचार और चोरी करने जैसा घातक समझती थीं। इसलिये निर्बलता को घातक समझते हुए, शारीरिकोन्नति प्रत्येक को करनी चाहिये।

**दूसरा कर्त्तव्य**—अपने को पवित्र बनाना है। पवित्रता से बल का दुरुपयोग नहीं हुआ करता। इन्द्रिय और मन में, पवित्रता का संचार होने से मनुष्य सदाचारी बना करता है। पवित्रता के लिये मन का शुद्ध होना अनिवार्य है। मन शुद्ध-अन्न के सेवन और सत्य के क्रियात्मक प्रयोग से शुद्ध हुआ करता है। छल और कपट से पैदा किया हुआ अन्न, मन को दूषित कर दिया करता है। सस्कृत में कहावत है—“यथा अन्न तथा मन”।

**तीसरा कर्त्तव्य**—अपने को अच्छा बनाने के लिये मनुष्य का तीसरा कर्त्तव्य यह है कि वह अपने अन्दर श्रद्धा के भाव पैदा करे।

श्रद्धा, यास्काचार्य के निर्वचनानुसार, “श्रत् सत्य दधाति या सा श्रद्धा” सचाई का धारण करना है। सचाई का ज्ञान रखने से मनुष्य सचाई पर अमल करने के लिए बाधित नहीं होता, परन्तु सचाई के धारण कर लेने, अर्थात् स्वाद चरने के सदृश, उसके अनुभव कर लेने से, वह उस सचाई के विरुद्ध अचम्भा कर सकने के लिये मजबूर हो जाता है।

**कर्त्तव्य का दूसरा विभाग**—

मनुष्य को दूसरों के प्रति क्या करना चाहिये, इस सम्बन्ध में उसके कर्त्तव्य इस प्रकार हैं—

१ अपने हृदय में उसे किसी के लिए भी, ईर्ष्या और द्वेष के भाव नहीं रखने चाहिए। ऐसे भावों के रखने से किसी दूसरे को हानि हो या न हो, यह तो सदिग्ध है, किन्तु यह निश्चित है कि इनसे उस

का इरादा मस्तिष्क होकर किसी अथवा बातों के सोचने और विचारने के योग्य नहीं रहता ।

२. मनुष्य व्यक्ति के रूप में किसी दूसरे को तकसीक नहीं देखता । ईश्वर व्यापकत्व से सभी मनुष्यों के "शरीरों में व्याप्त" रहता है । जब प्रत्येक प्राणी के शरीर में ईश्वर मौजूद है, तब उसका निराहार किये बिना कैसे उसके निवास-मन्दिर को कोई छेद-छेद सकता है ? यही निराहार तो व्यक्तिगत है ।

३. मनुष्य को दूसरों की भी सतनी हो चिन्ता करनी चाहिये जिससे कि वह अपनी करता है । इसे अथवा तरह से यह समझ लेना चाहिए कि कर्मकी उत्पत्ति का रहस्य अर्थों की उत्पत्ति में विधा हुआ है ।

**कर्तव्य का तीसरा विभाग—**

१. ईश्वर-मेघ और ईश्वर-विद्यमान से मनुष्य अपनी आत्मा को कलबाग बना सकता है । ईश्वर के जाने के लिए, अपने को पहले जान लेना आवश्यक है । क्यों ? इसलिये कि ईश्वर-ज्ञान-प्राप्ति इन्द्रियों के द्वारा नहीं हुआ करती । इन्द्रियों की प्रवृत्ति अपने बाह्य निबन्धों की ओर है और इसीलिए वे अपने बाह्य विषयों के सिवा अन्य कुछ नहीं देख सकती और इसीलिए उन्हें बहिर्मुखी कहा जाता है । इसके विपरीत आत्मा अन्तर्मुखी होने से अपने को भी देख सकता है और अपने भीतर मौजूद परमात्मा को भी देख सकता है । यदि वह अपने को नहीं देख (जान) सकता होता तो फिर परमात्मा को किस प्रकार देख सकता ? इसीलिए अपने को जान लेने की शिक्षा, विद्या, अर्थात् के आरम्भ से अब तक बराबरें बने चले आ रहे हैं । "Know thy self" प्रसिद्ध कहावत है । स्थितियों ने एक अर्थ जितना है कि 'जिस व्यक्ति को अपना और अपनी मातृभाषाओं का ज्ञान है, उसके लिए स्वीकार करना पड़ेगा,

कि वह परमात्मा से प्रेम करता है।” जब हम कहते हैं कि परमात्मा का ज्ञान हमें है तो इसका केवल इतना ही अभिप्राय होता है कि हम उसे इतना जानते हैं, जो हमारे कल्याण के लिये आवश्यक है। उसे ठीक-ठीक जान लेना मनुष्य की शक्ति से बाहर है। एक उर्दू के कवि ने लिखा है और बहुत अच्छा लिखा है—

क्या तुरफ़ा है खबी मेरे महबूब की देखो ।

दिल में तो वह आता है, समझ में नहीं आता ॥

हमें क्यों उसे जानने अथवा उससे प्रेम करने की ज़रूरत है ? इस प्रश्न के उत्तर के लिए निम्न पंक्तियाँ विचारणीय हैं—

संसार में शान्ति, मनुष्यों में भ्रातृ-भाव, विला लिहाज रग, नस्ल और देश के समस्त देशवासियों को प्रेम के एक उत्कृष्ट सूत्र में बाँधे रखने का कारण और एकमात्र कारण, वास्तविक आस्तिकता है। वेद में इस बात को असन्दिग्ध शब्दों में कहा गया है कि “इस पृथिवी पर बसने वाले समस्त मनुष्यों का एक विशाल परिवार है, जिनमें न कोई छोटा है न कोई बड़ा, अपितु सब भाई हैं, उन सबका पिता ईश्वर और उन सबकी माता पृथिवी है।” वेद प्रतिपादित, इस सार्वत्रिक भ्रातृभाव का अनुभव, मनुष्य उसी समय कर सकता है, जब पहले ईश्वर के सार्वत्रिक पितृभाव का विश्वास उसे हो जाय। इसी विश्वास के पहले आ जाने की ज़रूरत है। ईश्वर के प्रेम का प्रारम्भिक रूप वह होता है, जब मनुष्य के हृदय में ईश्वर-विश्वास का सूत्रपात हुआ करता है। यह विश्वास बढ़ते-बढ़ते निस्स्वयात्मक ज्ञान का रूप धारण कर लेता है और तभी प्रेम का उत्कृष्ट रूप प्रादुर्भूत होता है। उसमें प्रेमी प्रियतम के प्रेम में मग्न होकर अपनी सुखबुध भुला देता है। यही प्रेम की उत्कृष्ट अवस्था भक्ति है। भक्ति की भावना में भक्त केवल

(१) अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते संभ्रातरो वाञ्छु सौभगाव । युवा पिता स्वरा रुद्र एषां सुदुष्ठा पृथिवी सुदिना महद्भव ॥ ऋग्वेद १।६।१३



स्वयं ही शान्त और प्रसन्नबदन मही रहता अपितु अपने संपर्क में आने वाले प्रथिमात्र के आहार का भी कारण बन जाता है। यह निश्चित है कि संसार के अधिकतर प्राणी ऐसे नहीं हो सकते, परन्तु यदि ध्येय मलय यही हो जाय तो जो कोई इस मग में जितना भी चलेगा वह छलने ही से मृत और शान्ति के माध्याम की शक्ति का एक दरजे तक भवय कारण बनता जायगा। इसलिये आदिक मानना आज भी पुराने ढाँचे की व्याप्य वस्तु मही अपितु जीवी जगती संसार के वर्तमान अग्रप्रति-रूपी रोग की एकमात्र चिकित्सा है। कलत अशांति से पीड़ित, संसारी पुरुषों को चाहे वे धोरोप में निश्वास करत हों या परिया में मुरी और ना-मुरी से इस चिकि स्मा-विधि का सेवन करना ही पड़ेगा। अस्तु, यह बात कही जा चुकी है कि इस चिकिस्मा-विधि के सेवन-रूप ईश्वर-विश्वास से मनुष्य का आत्मा कसबाह बना करता है। अब हम यहाँ यही पल्ला देना चाहते हैं कि किस प्रकार आत्मा में शक्ति और बल आता करते हैं। इसके मुख्यतया पाच साधन हैं —

**पहला साधन—**आत्मा के प्रतिकूल कार्यों से बचना और आत्मसुख का कार्यो का करना।

प्रतिकूल कार्यों से निर्बंशता और अनुकूल कार्यों से आत्मा में सरसता आना करनी है। ईश्वर के विषय गुण्य आदि से अपर बन्त एक प्राथिमात्र के कल्याण के लिए काम में आया करते हैं। इसलिये मनुष्य का कर्तव्य है कि यथासम्भव वह कर्मों से बिलने गुणों को भी अपने आत्मा में ला सके जाये। आत्मा के प्रतिकूल कार्यों कही होते हैं जिनसे कार्यों का कष्ट पड़े। ईश्वरीय गुणों के अनुगमन से वह ऐसे ही काय्य कर सकेगा जो आत्मा-नुकूल हैं, और किसी को मा कष्ट देने वाले न हों। गुणों को अपने अन्दर करने का साधन बल है। इसलिये दैनिक जप में हुम्

समय अवश्य प्रत्येक व्यक्ति को लगाने का यत्न करना चाहिए।

**दूसरा साधन—आत्म-निरीक्षण ( Self-introspection )**

से मनुष्य के भीतर से वे सारे कार्ग्य, जो आत्मा के प्रतिकूल होते हैं, दूर हुआ करते हैं। आत्म-निरीक्षण का अभिप्राय यह है कि मनुष्य किसी खास समय दूसरों पर ध्यान न देकर केवल अपने कृत्यों पर विचार किया करे और उन कृत्यों को, जो उसे मालूम हों कि दुष्कृत्य हैं, उन्हीं के छोड़ने का निश्चय परमात्मा को साक्षी करते हुए कर लेना चाहिए और फिर उस निश्चय को बराबर स्मरण करते रहना चाहिए। सोते समय यह काम अधिक से अधिक उत्तम रीति से किया जा सकता है। फलतः प्रतिदिन उसी समय २० मिनट इस कार्ग्य में लगाने चाहियें। इसका फल यह होगा कि अनेक दुर्गुण और कुकृत्य उससे छूटते रहेंगे। जप से जहाँ मनुष्य में अच्छे गुण आया करते हैं, आत्मनिरीक्षण से वहाँ उसके अन्दर से दुर्गुण निकला करते हैं।

**तीसरा साधन—आत्म-बल वृद्धि का तीसरा साधन तप, है।**

तप कहते हैं कठोरताओं के सहन करने को। कठोरताओं को सहन करने से मनुष्य के भीतर साहस की वृद्धि होती है, जिससे उसे कोई कष्ट वेदना नहीं पहुँचा सकता। आरामतलब आदमी सदैव दुःख उठाया करते हैं, परन्तु तपस्वी और अपनी ओर से प्रसन्नता के साथ-साथ दुःखों को सहन करने वाले व्यक्ति सुखमय जीवन व्यतीत किया करते हैं। महाभारत में एक जगह द्रौपदी द्वारा सत्यभामा को शिक्षा देने की बात अंकित है। द्रौपदी ने उसे कहा कि "सुखं बुद्धेनेह न जातु लभ्यम्, दुःखेन साध्वी लभते सुखानि" दुःख और सुख का चक्र एक के बाद दूसरा, मनुष्य के सामने क्रमशः आया करता है। यदि एक व्यक्ति अपनी ओर से दुःख के चक्र को तपस्या द्वारा अपने सामने ले आता है, तो निश्चित रीति से उसके बाद का चक्र

सुख का डोग्र और मनुष्य तपस्वी जीवन रखते हुए जब तक चाहे इस सुख के चक्र को अपने सामने रखता है। दुःखी मनुष्य निवलात्पा और सुखी सबैव स्वच्छात्मा हुआ करता है। ।

**चौथा साधन—**स्वाध्याय चौथा साधन है। उत्तम मंत्रों के अभ्ययन से मनुष्य के विचार विरामित हुआ करते हैं और तंग्रविही और सङ्कोच के संशुचित क्षेत्र से वह बाहर हो जाता करता है। सङ्कोच में आत्म-व्यक्ति और अकारण से आत्मा आह्लाहित हुआ करता है। ऐसे मंत्र जो मनुष्यों की रुचि बिगाड़ने और ऊर्ध्व कुबालना और कुदृष्टि पैदा करने वाले हैं, कभी नहीं पढ़ने चाहिये। उत्तम मन्त्रों और महान् व्यक्तियों के जीवन-चरित्र और धार्मिक तथा आचारवात् जीवन का वृत्ताई करने वाले मंत्र ही स्वाध्याय के मंत्र हो सकते हैं।

**पाँचवाँ साधन—**अन्य सेवा के माधों का मनुष्य के हृदय में उपलब्ध हो जाना पाँचवा साधन है। सेवा से मनुष्य का हृदय विरामित होता है और उसके भीतर निरभिमानता आती है। सेवा से कबल संकट ही का अकार नहीं होता किन्तु जिसकी सेवा करते हैं, उनका भी भला हुआ करता है। माध का तुम्हारे पदों में एक व्यक्ति गढ़ा है, जिसमें चोरी करने की कुठेब आ गई है, तो तुम किस प्रकार उनका सुधार कर सकते हो ? यदि तुम उसे बार-बार और कष्ट कर अस्मित करना चाहते हो और चाहते हो कि इससे उत्तम सुधार हो जाय तो वह संभव नहीं। तुम्हारे बार-बार के चिदान से सिद्ध कर वह एक दिन कहेंगे कि अच्छा मैं चोर हूँ, तुम जो सुधार करना चाहते हो करो। अब वह निर्दम्य हो गया अब उसे चोर कहे जाने की अज्जा बाकी नहीं रही। किसी भी पतित व्यक्ति का सुधार उसके अन्तर्गुणों को बार-बार तुहण कर चिदाने से नहीं हुआ करता। सुधार का माग दूसरा है। अन्तर् अन्तर्जन करने ही से संभव

मिला करती है। तुम किसी व्यक्ति में, जो अवगुण है उसका जिक्र भी न करो, किंतु यत्न करो कि उसके दुःख-सुख, और विशेषकर दुःख में सहायक बनो। ऐसा दो चार बार करने से वह तुमसे इतना प्रभावित और तुम्हारा इतना कृतज्ञ होगा कि बिना तुम्हारे कहे स्वयमेव अपने अवगुणों को छोड़ देगा।

### सेवा का एक उदाहरण

बङ्गाल में भक्तिमार्ग के प्रचारक चैतन्य के जीवन की एक घटना बहुत शिक्षाप्रद है। चैतन्य एक समय अपने कुछ शिष्य और अनुयायियों के साथ बङ्गाल के एक नगर में गये और एक वाटिका में अपना आसन जमाया। नगर के लोग उनके दर्शनार्थ आने लगे। उन्होंने, इन आगन्तुकों में अधिकांश से एक प्रश्न किया और वह यह था कि तुम्हारे नगर में सब से अधिक खराब आदमी कौन है? प्रत्येक ने एक ही उत्तर दिया कि मघाई नाम का एक व्यक्ति उनके नगर में सब से अधिक बुरा और प्रायः सभी के लिये कष्टों का कारण है। चैतन्य ने अपने दो शिष्यों को भेजा कि जाओ, मघाई को बुला लाओ। दोनों शिष्य मघाई के पास पहुँचे। वह उस समय अपने किसी मित्र के साथ बैठा हुआ शराब पी रहा था। जब शिष्य ने गुरु का सदेश उसे दिया तो उसने एक खाली बोतल उसके सिर में दे मारी। सिर में जखम हो गया और खून निकलने लगा। शिष्यों ने गुरु के पास जाकर घटित घटना सुना दी। गुरु ने अपने आठ उस शिष्यों को भेजा कि जाओ, और यदि मघाई खुशी से न आये तो उसे पकड़ कर ले आओ। इस प्रकार पकड़ा हुआ मघाई चैतन्य के समीप पहुँचा। चैतन्य ने एक अच्छा गुदगुदा फर्श बिछवा रक्खा था। मघाई उसी फर्श पर लिटाया गया। वह सोच रहा था कि उसे दंड मिलेगा, परन्तु देखता क्या है कि चैतन्य आ कर उसके पैरों के पास बैठ गये, और उन्होंने अपने हाथ उसके पैर

पर इस प्रकार रहे जैसे कोई किसी के पाँव दबाता है। मर्णाई प्यरा  
 कर लठ बैठता। उनका दृश्य छल्ल-पल्ल गया और वह चेतन्य  
 के हाथों को पैर से हटा कर प्यराये हुए दिल और हर बाँसों से  
 चेतन्य से बहने लगा कि म्हााराज ! मैं बड़ा पाठकी हूँ। मैंने अपने  
 अपराध किये हैं आपन क्यों आपन पवित्र हाथों को मेरे शरीर से  
 जगमगर अपवित्र किया ? अब यह मर्णाई पहला मर्णाई नहीं रहा था।  
 अब उनके भीतर आत्म-ज्ञानि पैदा हो चुकी थी और वह अपने  
 दुष्कृत्यों से ब्रह्मा करने लगा था। अचिन्त बहने की पारलत नदी  
 चेतन्य का जीवन-चरित्र बतलाता है कि मर्णाई उनके शिष्यों में सब  
 श्रेष्ठ शिष्य बन गया। यह सब चेतन्य के सेवा-भाव का फल था।  
 अस्तु, इन अपर्युक्त पाँच बातों पर अमल करने से मनुष्य का आत्मा  
 बलवान बन जाता करता है। निष्कण यह है कि मनुष्य पहले नीनों  
 प्रकार के कर्तव्यों को करके श्रेष्ठ मनुष्य बन जाता है, और इन  
 अन्त में बर्णित पाँच बातों पर अमल करके अपने आत्मा का भी  
 बलवान बना लिया करता है। तभी उनके भीतर सब-व्यक्तियों का  
 भाव जागृत होते हैं और तभी वह ईश्वरोपात्मन्य की ओर प्रवृत्त होकर,  
 मक्तिमार्ग का पथिक बना करता है। हाँ, तभी मक्ति का, जिनके प्रचार  
 के लक्ष्य से यह ग्रन्थ लिख्य गया है और जिनके सिधे से पंक्ति-बो  
 सिन्धी जा रही है।

दैनिक 'मिस्त्रप' साहौर के स्वामी और आप्य प्रादेशिक प्रति-  
 निधि ममा साहौर के प्रधान श्री सा० सुराहात्मन्य की इस समय मेरे  
 साथ लोन्स केन्द्र गुलबगम (हैदराबाद) में हैं। जो उन्हें और उनके  
 परिवार को जानता है, वह वह बात बहुत अच्छी तरह जानता है कि  
 साहबजी तथा उनका परिवार कैसा सब मेरी का विशुद्ध आप्य  
 जीवन रहता है। सा० सुराहात्मन्य जी के सिधे मक्ति-मगा सब कुछ  
 है, और इन्हीं-उन्होंने जेब के अन्तारा के समय का लुपुपयोग

करते हुए भक्ति पर यह ग्रथ लिखा है। कई बार यहाँ जेल की प्रतिकूलताओं के कारण उनका स्वास्थ्य भी खराब रहा, और भी अनेक प्रकार के कष्ट उठाने पड़े, परन्तु फिर भी भक्ति के प्रेम से, उन्होंने ग्रथ का लिखना नहीं छोड़ा। पुस्तक की भाषा उत्तम, सरल और हृदय-प्राह्य है। उसमें सभी विषयों का इस प्रकार वर्णन किया गया है कि उससे प्रत्येक कम से कम शिक्षा रखने वाला व्यक्ति भी लाभ उठा सके। उनकी लिखी अपनी राम-कहानी से साफ प्रकट होता है कि उन्होंने जिस मार्ग का आश्रय लिया, वह उनके लिए कितना शान्तिप्रद सिद्ध हुआ। इसीलिए उन्होंने यह आवश्यक समझा कि अनेक चहनों और भाइयों को भी उससे लाभ उठाने का अवसर दें। पुस्तक पर सरसरी निगाह डालने से भी उसकी उपयोगिता प्रकट हो जाती है।

भक्ति की विधि, मन के निग्रह के साधन, सकल्प, सस्कार और स्वाध्याय आदि अनेक उपयोगी विषयों पर पुस्तक में प्रकाश डाला गया है। पुस्तक का वह भाग, जिसमें दिखलाया गया है कि कौन लोग भक्ति से वचित रहते हैं, पाठकों के लिए विशेष ध्यान देने के योग्य हैं।

यह विश्वास है कि पुस्तक जिस सदुद्देश्य से लिखी गई है, पाठकगण उसका ध्यान रखते हुए अधिक से अधिक उससे लाभ उठाने का प्रयत्न करेंगे। पुस्तक वास्तव में प्रचार योग्य है। इन्हीं कुछ एक शब्दों के माध्यम पुस्तक पाठकों के सम्मुख रखी जाती है।

फिल्टर वाहे, गुलकर्णी }  
 २७ मई, १९३६

—नारायण स्वामी



## राम कहानी

**जी**वन के उस आरम्भिक काल में जब कि साधारण बालक

रात की काली चादर ओढ़ कर माँ की मीठी थपकियों में सो जाना पसन्द करते हैं, मैं उन नीरव-निस्तब्ध रातों में, जब सब लोग सो जाते थे, गायत्री-माँ की लोरियाँ सुना करता था। बच्चों के लिए खेल-कूद भी बहुत आकर्षण रखते हैं, परन्तु मेरे लिए तो यही आकर्षण सब से बढ़ कर रहा कि मैं गायत्री माँ की मृदुलगोद में खेला करूँ।

मैं खिन्न रहता था—ससार से निराश। आठ-नौ वर्ष की अल्पायु में ही मैंने अनुभव किया कि मेरा जीना निरर्थक है। ससार की कोई सुनी छोर खोज कर मैं रोया करता और अपनी मूक-भाषा में अपने गाँव से परे दीखती उन काली पहाड़ियों से पूछता—मेरे से कोई भी क्यों प्रसन्न नहीं है ? अध्यापक, मित्र, सगे-सम्बन्धी और दूसरे—क्यों मेरे साथ प्रेम-व्यवहार नहीं करते ? यह पहाड़ियाँ निर्जीव थीं, निश्चल और निष्प्राण। वह मेरे प्रश्न का उत्तर न दे सकती थीं, न देतीं। परन्तु एक दिन मेरी सजल आँखों को देख कर, मेरे मुरझाये चेहरे को देख कर स्वर्गीय स्वामी नित्यानन्द जी ने, जो उन दिनों हमारे गाँव जलालपुरजट्टा में पधारे थे, मुझसे इसका कारण पूछा।



मैंने कहा— 'मेरा जीना निरव्यक्त है। मुझसे कोई भी प्रसन्न नहीं। किसी भी विषय में मग प्रवेश नहीं! ऐसा जीने का नाम ?' स्वामी जी ने मेरे दृष्टि को धारस बँधाया। मुझे आश्चर्य से देते हुए बोले— 'निराश न हो। हम तुम्हें एक उपाय बताते हैं। उसका सेवन करो। तुम्हारे संस्र इष्य को शान्ति मिलनी मग शोक और विघ्न-बाधाएँ दूर हो जाएँगी।'

मैंने बाम् के कर्णों में पानी की मिठास का अनुभव किया। इस अचक्षरमय संसार में उज्ज्वल ज्योति का एक मधुर-आभास पाया। मैंने किन्के का सहारा लेते हुए कहा— 'बताइये— आप की अनुकम्पा।' और जब उनकी आज्ञानुसार मैं आगाह का एक पत्रा ले आया तो स्वामी जी ने उस पर गायत्री मंत्र सिखा दिया। गायत्री-मंत्र मुझे पहले भी कन्ठस्थ था किन्तु उन दिन उसे देखकर मेरी आँखें एक अद्भुत ज्योति से चमक उठी।

तब उन्होंने मुझे इसके अर्थ बतलाते हुए कहा— 'जब धर के सब लोग सो जाँव तब उठ कर इस मंत्र का जाप किया करो।'

इस घटना को आज्ञा लगभग ४६ वर्ष हो चुके हैं, किन्तु मुझे एक भी ऐसा दिन धारण नहीं जब कि मैं गायत्री-मंत्र की पवित्र ज्योति में न बैठता हूँ। इस जाप से मेरे निराश इष्य को आशा मिली मेरे क्लिप्त-चित्त को रम मिला और मुझ अज्ञान को शान्ति का महासागर। ज्यों-ज्यों मैं इस मंत्र का जाप करता गया मेरी रुचि प्रभु-आर्ति की ओर उत्तरोत्तर बढ़ती गई। प्रत्येक मंत्र मेरे ऊपर अपना नया रंग जोड़ता गया और धीरे-धीरे मैं उसमें इतना रंग गया कि मुझे संसार का किसी दूसरी बस्तु में उससे अधिक आकर्षण हीन नहीं पड़ा।

सगन्ध की अपार-कृपा से मेरा जन्म ऐसे मातृ-पिता के घर में हुआ जो स्वयं आर्ष-जीवन व्यतीत करने वाले और प्रभु-महक हैं। उनके शिष्यत्व और पोषण ने मेरे अन्तर प्रभु-मक्ति का मास

कूट-कूट कर भर दिया। इस पर भी जो कृपा हुई, तो मुझे इस ससार-यात्रा में जीवन-सगिनी भी प्रभु-भक्ति के रङ्ग में रङ्गी हुई ही एक देवी मिली। विवाह के पश्चात् मेरे भक्ति-भाव को इस देवी ने और भी तीव्र कर दिया। सहघर्मिणी के बाद सन्तान भी प्रभु-भक्त ही मिली। मैं तो चागों और से प्रभु-प्रेम, प्रभु-भक्ति और प्रभु-विश्वास से श्रोत-प्रोत हो गया। और जब १९०७ में श्री पूज्य महात्मा हसराम जी के साथ ससर्ग हुआ तो प्रभु-प्रेम पर एक और अनोखा रङ्ग चढ़ गया। इसके पश्चात् मुझे जो सम्बन्धी मिले, जो धर्मपुत्र और धर्मपुत्रियाँ भी मिलीं, वे भी प्रभु के सच्चे भक्त। इसी प्रकार मुझे मित्र भी वही मिले जो प्रभु-भक्ति के रङ्ग में रगे हुए थे।

ऐसा अनुकूल वातावरण पाकर प्रभु-भक्ति का रङ्ग दिन प्रति-दिन गाढ़ा ही होता चला गया। जीवन में समय-समय पर परिवार, सम्बन्धियों तथा मित्रों की ओर से पूर्ण सुभीता होने से मुझे इस मार्ग पर अप्रसर होने में बड़ी सहायता मिली, और जब मेरे भाग्योदय की घड़ी निकट आ पहुँची तो फिर गुरु अचानक ही मिल गये। उन्होंने स्वयं मेरा हाथ थाम, मुझे भगवान् के सम्मुख बिठाकर उसकी मल्लक दिखा दी। जब कभी भी मैं एकाकी होकर अपने जीवन की अद्भुत घटनाओं पर विचार करता हूँ तो मुझे इन सब के भीतर मेरी प्रिय माता 'वेदमाता' का ही हाथ निहित नज़र आता है। मैं कुछ भी नहीं हूँ सिवाय इसके कि गायत्री-माँ की कृपा का पात्र हूँ। मैंने जो कुछ भी पाया है, उसी से, उसी के आशीर्वाद से पाया है।

यह कथा वर्णन करने का अभिप्राय यही है कि वह बालक-वालिकायें, युवक-युवतियाँ तथा वृद्ध और वृद्धायें, जो मेरी तरह श्रातुर और व्याकुल हो रहे हों, मेरे जीवन की इस सत्य राम-कहानी से कोई लाभ उठा सकें। वह ठोकरें खाने की बजाय एक निश्चित और सफल-मार्ग की ओर अप्रसर हों।

द्विहराबाद धार्मिक-संभार के सम्बन्ध में डेढ़ वर्ष के लिये कारा-  
 गृह में बन्द मेरे मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि इस जेलयात्रा  
 का 'प्रसाद' अपने भाई-बहनों को क्या है। सीमाव्य से जिस जेल  
 ( गुलबर्गा जेल ) में मैं बन्दी का जमी जेल में श्री पूष्य महात्मा  
 नारायण स्वामी जी महाराज भी बन्दी थे। उनके सस्त्र में रहते  
 हुए और प्रतिदिन उपनिषदों के रहस्य सुनते हुए मेरी अन्तरात्मा से  
 बड़ी ध्वनि प्रतिध्वनित हुई कि 'प्रसु-मक्ति' का ही प्रसाद सम्पुल होगा  
 लेकिन मैं प्रसाद देने वाला कौन ? मेरे पास क्या ही क्या है यह  
 तो ज्ञानी की कृपा का प्रसाद है, ज्ञानी की आज्ञा से आपके सम्पुल  
 रस रहा है। अच्छा सगे—न सगे, माये न माये यह प्रेम की भेंट है,  
 स्वीकार कीजिये।

विक्रम वेद पुस्तकाली  
 प्रथम पैरान्त १९६९  
 ११ अक्टू १९६९

मनों के बरकों का रस-कलाप  
 कलाकल्प

## असार-संसार

असार है यह ससार, और फिर यह शरीर तो सर्वथा क्षण-भंगुर है। जो श्वास आता है, उसके जाते समय कोई नहीं कह सकता कि फिर यह लौट कर आएगा या यही अंतिम श्वास सिद्ध होगा। यजुर्वेद का स्वाध्याय करते हुए जब मैं पैंतीसवें अध्याय पर पहुँचा और डमकें वाईस मंत्रों का पाठ किया तो मेरी आँखें खुल सी गईं। भगवान् ने हमें इस ससार में क्यों भेजा, जीव को यहाँ आ कर क्या करना चाहिये, जन्म और मृत्यु क्या हैं, मर कर क्या गति होती है ? कुछ ऐसी समस्याएँ मेरे सामने उपस्थित हो गईं, जिन पर कभी विचार करने की आवश्यकता न पड़ी थी। परन्तु इस अध्याय ने मुझे बाधित कर दिया कि मैं इनपर विचार करूँ। इसी अध्याय का चौथा मंत्र है—

अश्वत्थे वो निपदन षणो वो वसतिष्कता ।

गोभाज इत्किनासथ यत्सनवथ, पूरुषम् ॥ यजु० ३५।४॥

“कल पर्यन्त मसार रहे न रहे, ऐसे अनित्य सगार में, तुम लोगों की स्थिति है, और पत्ते के तुल्य चञ्चल शरीर में भगवान् ने तुम्हारा निवास किया है। परन्तु, तुम इन्द्रियों ही के दास हो रहे हो, परमात्मा की भक्ति करो, इसीसे तुम्हारा कल्याण होगा।” स्वामी दयानन्द ने डम मंत्र का भावार्थ करते हुए लिखा है—

“मनुष्यों को चाहिए कि अनित्य-संसार में अनित्य-शरीरों और पदार्थों को प्राप्त हो के क्षण-भंगुर जीवन में धमाधम के साथ नित्य परमात्मा की उपासना कर आत्मा और परमात्मा के संयोग से उत्पन्न हुए नित्य सुख को प्राप्त हों।”

क्या आगे बचने को चाहत था कि उनके लिये चार अग्रिम को प्राप्त था: आस्था या नहीं ? बिहार के लोग दिन के समय अपने कामों में संलग्न थे कोई बुध्न पर बैठा या कोई बाजार में जा रहा था। मैं अपने बच्चे को रूप दिखा रही थी, भोजन बालक आराम से केवल कर रहे थे। जब अपने कार्यों में लग्न थे परन्तु तभी एक ऐसा मूढका आया, जिन्मसे सहस्रों मृत्यु की गोद में सों गये। विरपल अशुभ-कार्य भूमि पर लोपने लगी, ईंसते बाह्य रो उठे और जब यात्रारों की सधई की गई हो स्पईकिल पर सवार शारों मिली। उन्हें इतना भी समय न मिला कि वह सार्ईकिल से उतर हो सकें। सब जहाँ के जहाँ ही मृत्यु के प्राप्त बन गए। जित दिनों मुर्दाई का काम हो रहा था उन दिनों मैं वहीं था। मेरे सामने जब एक मकान की मुर्दाई की गई तो दो शारों एक साथ निकली। मैं बच्चे को गोदी में लिए खान करा रही थी। सामुम की सिक्किवा उसके हाथ में थी, किन्तु जब मृत्यु आई तो इतना भी नहीं हुआ कि सामुम हो मोचे रक्त सकली। ठीक हो है—

क्या मरोच है किन्तुपत्नी का आत्मी पुत्रपुत्र है नहीं था।”

क्या १९३४ में केटा बाले जानते थे कि उनके भाग्य में क्या लिखा है ? रात को किठनी कर्मों किठने छाम, किठनी लक्ष्मी और किठने ही प्रोप्रम मन में बना कर वह सोये थे। किठनों ने पक्षी रात विवाह के कडन पाने थे किठनी ही बेचिनों ने क्या की गई थी कलाई थी। परन्तु, रात्रि के बने अन्धकार में मूक्य के एक ही मठके ने सब आशाओं पर पानी फेर दिया। सुन्दर नगर मिठी का डेर बन

गाया, सैकड़ों मर गए और महसूसों रोने के लिए जीवित रह गए। किस बात पर मनुष्य इतना इतराता है और क्या सोच कर इस अमूल्य जीवन को व्यर्थ कामों में नष्ट करता है? अरे मन ! कभी तूने इसपर विचार किया !

वृक्ष के पत्ते की भाँति यह शरीर कत्र टूट कर गिर पड़ेगा, यह कोई नहीं कह सकता। फिर जब तक यह वृक्ष के साथ जुड़ा हुआ है, तबतक इसका सदुपयोग क्यों न कर लिया जाय ? क्यों रे मन, कहो, क्या इच्छा है। इस अल्प-काल में, जिसमें, कितना ही समय बचपन में व्यतीत हो गया, कितना ही सोने में गुजर गया, कितना ही रोगों और उनकी निवृत्ति में लग गया, कितना ही शरीर-रक्षा में चला गया, और कितना ही विषय-वासनाओं की पूर्ति में नष्ट हो गया, क्या करने का निश्चय है ? कौन जानता है आस अभी समाप्त हो जाने हैं या कुछ समय के पश्चात्। तू उम शेष काल को भी खो देना चाहता है या इसका अच्छा उपयोग करना चाहता है। जीवन का उद्देश्य तो तुम्हें भगवान् बतला चुके हैं—और वह है “भक्ति”, अनित्य-शरीर में रहते हुए दो नित्य-ज्योतियों का मिलाप, आत्मा और परमात्मा का योग।

पत्थरों से भरी नदी—

यजुर्वेद के पैंतीसवें अध्याय के दसवें मन्त्र में कहा गया है—

अशमन्वती रीयते सरमध्वमुत्तिष्ठत प्रतरता सखाय ।

अत्रा जहीमोऽशिवा येऽशसच्छिवान्वयमुत्तरेमाभि वाजान् ॥यजु० ३५।१०॥

“पत्थरों से भरी हुई ससाररूपी यह नदी वही चली जा रही है। हे मित्रो ! ( इससे पार उतरने के लिए ) कमर कसो, उठो और पार उतर कर ही दम लो। दुःसदायी जो बन्धन हैं, उनको यहीं छोड़ कर कल्याणप्रद सच्चे बल, आत्म-बल के भरोसे इसके पार उतर चलो। कितने फिसलने पत्थर हैं इस मागर में, जरा ध्यान चूका और

फिरतक गए ।

मर्द हरि इस नदी का बर्तन करते हुए खड़े हैं—

“आशा नाम । मदी मनीरबबसा तुम्हातवाउत्त ।

राबप्यहरी विलंबविद्या भैरवदुपभ्रंशिवी ॥

कौशिकार्तप्रवृत्तपरिचरना योगुहभित्तापरी ।

। तस्य पारतप्य विदुष्यन्मसा न्यमि विनीतः ॥

“आशा नाम की इस नदी में मनोहररूपी बड़ा भरा है। इसमें तृष्णारूपी झरों और रागात्तपी भग्न हैं। नाना प्रकार के तर्क बिलंबे पक्षी हैं। यह नदी भैरव-रूपी वेद उल्लास देती है। मोह ही इसके अंतिम मंत्र हैं, और विम्लारूपी इसके अंतिम विचार हैं।”

अरे मन! इसी विचारों से तू तब व्यस्य रहा है। तारे साथी पार जा रहे हैं। ऊपर से आनी रात आ पहुँची है और तू पाप की गठरी अधिक भारी करता चला जा रहा है। भारी गठरी उठाने जैसे पार कर सकोगे। जिन विषयों को तू सुख और आनन्द देने वाला समझे बैठा है, क्या यह तरे काम आणगा? नादान यह तो यही के बलिष्ठे हैं। तू कुछ भी स्वयं नहीं ज्ञान जा सकोगे। मन्त्र न मन्त्रित न कोई मोटर न गाड़ी न कुछ और। हा जिन व्यसों में तू पड़ गया है, वह तेरी पाप की गठरी को भारी भरभरा बना देंगे और जब तू इस मंती को पार करने लगोगे तो वह बाधा बनकर तुम्हें रुक देंगे।

अरे मन! तू मलिनिय गठरी में बोझ बढ़ाए ही चला जा रहा है। बट छोड़ इन रेलों को। एक एक अक्ष जो बोल रहा है अममोल है, फिर नहीं मिस्रण।

। पारे की पुरी है विच विचारों का कुछ

कल, वहीं ही इन मन्त्रों में पहा पकटावैका ॥

अठारव जो भी और जितना भी समय पाम रह गया है, इस

अब धर्माचरण और प्रभु-भक्ति में लगाना चाहिए। एक क्षण के लिए भी मन को अब छुट्टी न दे, जिसे वह हमें हमारे जीवनोद्देश्य से विमुक्त कर दे।

ऋग्वेद के पहले मण्डल में १६४ वे सूक्त के जो ३७ और ३८ मन्त्र हैं, उनमें भी वही सुन्दरता से अपने आपको पहचानने और अन्तित्य-शरीर से लाभ उठाने की बात कही गई है—

न विजानामि यदि वेदमस्मि निरय मनद्धो मनमा चरामि ।

यदि मागन प्रथमजा ऋतस्यादिद्वाचो अणुये भागमस्या ।

ऋ० १-१६४-३७

“मैं नहीं जानता, मैं कौन सी वस्तु हूँ ? मैं, जो एक रहस्य बना हुआ हूँ, अब मन के माथ पूरा तय्यार हो कर चल रहा हूँ। जब ऋत ( सृष्टि-विज्ञान ) का बड़ा भाई आत्म-विज्ञान मुझे प्राप्त होगा, तभी मैं इस वाक् ( वेद ) का भाग पाऊँगा।”

और—

अपाह् प्रादेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मत्येना सयोनि ।

ता शश्वन्ता विपृचीना वियन्ता न्यन्य चिक्र्युर्न निचिक्र्युरन्यम् ।

ऋ० १-१६४-३८

“अमर-आत्मा इस मरने वाले शरीर के माथ रहता हुआ माया के वशीभूत हुआ नीचे और ऊपर जाता है ( उच्च नीच योनियों में घूमता है )। दोनों अमर और मरने वाले साथ रहते हुए भी मदा भिन्न गति वाले रहते हैं, इनमें लोग एक को देखते हैं, दूसरे को नहीं।” इस अमर जीवात्मा और मरने वाले शरीर का सम्बन्ध-इस लिए किया गया है ताकि यह ‘अमर’ दूसरे ‘महा-अमर’ को, जो आनन्दस्वरूप है, पा सके। यह शरीर प्रभु को पाने का एक साधन है। यदि इस साधन ही को साध्य समझ लिया जाय और इसीकी पूजा आरम्भ कर दी जाय, तो क्या गति होगी और इस आत्मा का



क्या बनेगा, जिसने इसपर मरोसा किया। इसका यह प्रयोजन नहीं कि शरीर की सर्वथा अवहेलना कर दी जाए। ऐसा नहीं यह तो दुःख है। इसीका तो ज्ञान सबसे पहले प्राप्त करना है, यही तो प्रमु-मन्दिर है, इसीकी तो पूज्यरूप रखनी चाहिए। इसे मछी प्रकर ज्ञान्य पिश्याना चाहिए यह विद्वान् मन्त्र त्वा पुष्ट होगा कृत्वा ही शीघ्र धात्री को प्रमु-धरीम करा मकंगा। क्या दूटी मोटर मास्कि को यथास्थान पहुँचा सकती है ? यह तो मांग में ही उस पटक हैगी। क्या भरिपल टट्टू मधार का घर पहुँचाएगा ? नहीं यह तो उस सबाबने जङ्गल ही में छोड़ देगा। सभारी कज्जी ही होनी चाहिए। इसीक्षित मक्त प्रार्थना करता है—

म्यामे वषे विद्वेषस्तु वक्येनवायसम्भं पुषे  
मया कमन्तं प्रवृत्तमस्तमन्वऽप्येव पुत्ना वसेम ७

अ १-१२५-१

‘हि धमि-स्वरूप प्रभो ! जीवन के संभ्रमों में मेरे अन्दर तेज और शक्त हो। तुम्हारी म्योति को जगत् हुए हम शरीर को पुष्ट कर जानें विशार्व मेरे आंग मुक्त जंयं। अप्य हमारे अम्बुध बने ताकि सबप्रकार के विरोधी-भग को हम पराजित कर सकें।’

इसीक्षित शरीर का मन्त्र और पुष्ट होना निरान्त आत्परबक ही नया अपितु अन्विर्वा भी है।

मैं यह भी नहीं कहता कि शरीर को ससार के भोगों से अक्षित रक्षित। मही जिसने भोग भोग आ मकल हों भोग में फल्यु यह मरण रक्षित—

मोच न मुञ्च वक्येव मुञ्चन्तव न त्तं वक्येव त्तव ।

अथं न म्ही वक्येव वात्तस्तुत्वा न वीर्वा वक्येव वीर्वा ॥

मैंने बिचबों का भोग नहीं किया किन्तु बिचबों न ही मुझे भोग किया। मैंने उप न किया पर त्यों ने ही मुझे क्या कस्य। अथ

नहीं बीता, हम हो बीत गए। हमारी तृष्णा बूढ़ी न हुई, हम ही बूढ़े हो गए।

हमने भोग न भोगा, भोगों ने भुगताया हमें कहीं।

हमने तप नहीं किया तपों ने हमें तपाया न्यून नहीं ॥

काल न पीता, बीते हम ही किया व्यर्थ ही जग-व्यवहार।

तृष्णा बूढ़ी नहीं हुई, हम गल पद पहुँचे अन्त किनार ॥

### तेन त्यक्तेन—

सासारिक भोगों के भोगने से कोई रोकता नहीं है, न ही कोई यह कहता है कि सब कुछ छोड़कर अकर्मण्य हो जाओ, गार्हस्थ्य-आश्रम त्याग कर किसी वन में जा बैठो, कभी कोई आपको यह उपदेश न देगा कि ससार के बन्धनों, कर्मों और कष्टों से घबरा कर भीरु बन जाओ। कहने का तात्पर्य यह है कि यजुर्वेद के निम्न मंत्र को सदा सम्मुख रखो—

“तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा शृष कस्य स्वित्दनम् ।” यजु० ४०।१।

“तप त्याग से उपभोग कर, मत ललचा, (जरा सोच तो सही) यह धन किसका है ?” त्याग-भाव से भोग कीजिए। मैं आजकल निजाम सरकार की गुलबर्गा जेल में कैदी हूँ। इस जेल के वार्ड न० ८ में रहता हूँ—अब यह वार्ड मेरे ही नाम से विख्यात हो गया है। महात्मा नारायण स्वामी जी जिस वार्ड में रहते हैं, वह भी उन्हींके नाम से प्रसिद्ध हो गया है। राजगुरु प० धुरेन्द्र-शास्त्री Segregation ward में रहते हैं, परन्तु अब उसे सेगरेगेशन वार्ड नहीं कहा जाता, शास्त्री जी का वार्ड कहा जाता है। इसीप्रकार श्री शारदा जी वाले वार्ड को शारदा जी का वार्ड कहा जाता है। सब सत्याश्रमी जेल के भगवे रंग के कपड़े पहनते हैं, जेल के “तसले”, में दाल लेते हैं, “चम्पू” में पानी पीते हैं, जेल का टाट और कम्बल नीचे

पिछले हैं, जेल की इन सब वस्तुओं का प्रयोग करते हैं, परन्तु उन्हें  
 अपना नहीं समझते। अपनी कैद के दिन गुवार कर हम यह बतें  
 और यह हमने हमरे यह वर्तन यह टाट और कम्बस परी बोझ  
 आयेगे। जब हमें मुक्त किया जायगा या हम इन वस्तुओं से लिपट  
 लिपट कर रोयेंगे बोझ ही—अपित्त प्रसन्नता से उन्हें बोझ कर जेल  
 से बने जायेंगे। इसीको कहते हैं “लज्जेन मुञ्जीया”। एक व्याहृत्य  
 और वेस्त्रिण एक पानी यात्रा के दिनों में किन्नी धर्मशास्त्रा अथवा  
 मराय में उद्धरता है। वहाँ कुछ पचते अथवा कुछ दिन रहता है। वहाँ  
 के सारे पदार्थ प्रयोग करछा है। पत्तंग पर मोठा है, बतनों में जाना  
 पकवाता है कुर्मियों पर बैठता है, साय की बाटिका से पुष्प लेता है,  
 पत्र का है, दूसरे वात्रियों से बातालाप करता है, लखता है, किन्तु  
 लखके मन में यह कभी नहीं आता कि मैं इन सब वस्तुओं का  
 स्वामी हूँ और मैं इन सबको छत्रकर मात्र लेता हूँ। यह उन  
 वस्तुओं का भाग तो करता है परन्तु, उनमें किस पक्षी हो जाय।  
 अपने आपको लक्ष्मण स्वामी समझता है, और ना ही उनका  
 नाम। स्वामी-भाव और दास-भाव इन दोनों से ऊपर रहता है, अपने  
 आप को केवल बानी ही समझता है यदि अपने लोभ किया तो  
 चर्म गया फूटका गया और लकड़ा गया।

मन लोभ करे भी तो क्यों ? आखिर यह धन है ही किन्तु ?  
 क्या राबस का यह धन वा ? क्या कम इसका स्वामी वा ? क्या  
 औरंगजेब और कार्ल के पास यह वा ? मुगल बादशाहों का यह  
 धन वा किर्म और का ? किमी का री नहीं भान्न पानी किमी  
 का भी नहीं। यह तो बंबल भगवाह का है। नू इसे किन्तु एकत्र  
 कर केगा और क्या लमा करने से नू सगरी हो सकेगा ? यदि ऐसा  
 होता तो आधुनिक काल का सबसे बड़ा धनी अमेरिकन अपने  
 आपको सबसे बड़ा दुखी न पंजाता। मि हेनरी फोर्ड के

सम्बन्ध में कहा जाता है कि उनकी वार्षिक आय २४०००००० डालर है अर्थात् मोलह लारम रुपया दैनिक । इस समय उसके पास नकद तथा सम्पत्ति ४८ करोड़ पौंड की है । परन्तु इतना धन उसे कोई विशेष मुख नहीं दे रहा । इसलिये केवल धन सुख का कारण नहीं ।

इसका अर्थ यह नहीं कि मैं धनोपार्जन के विरुद्ध हूँ । उतना धन कमाइए, जितना धर्म तथा न्याय से कमा सकते हैं । पाप से धनोपार्जन न कीजिए और दूसरों का अधिकार छीन कर मत सम्पत्ति कि आप सुखी हो सकेंगे । अथर्ववेद कहता है—

अमा कृन्वा पाप्मान यस्तेनान्य जिघासति ।

असमानस्तस्या दग्धाथां बहुला फट्करिकति ॥ [२-१८-३]

“जो पाप करके, उसके द्वारा दूसरे को हानि पहुँचाना चाहता है (वह भूल कर रहा है, शीघ्र ही) बहुत से पत्थर (उसके सिर पर) फट्फट करके गिरेंगे ।”

पाप करने वाले को इस धोखे में नहीं रहना चाहिए कि वह दूसरों को धोखा देकर स्वयं बचा ही रहेगा । समय आने वाला है, जब यह पाप पत्थर बन कर उसका सिर फोड़ देंगे, इसलिए धन के लिए पाप न कीजिये, इसे एकत्र तो कर लीजिए लेकिन इसीको अपना प्राण न समझिए । इसीके हाथ विक मत जाइए ।

**तैरने और डूबने वाली नौकाएँ—**

नदी के किनारे खड़े होकर आपने देखा होगा कि नदी में कुछ नौकाएँ तैर रही होती हैं और कुछ डूबी हुई । मैं नौका का विरोधी नहीं हूँ और ना ही उसके तैरने का विरोध करता हूँ । मैं हूँ विरोधी उनके डूब जाने का । उनके तैरने और डूब जाने का क्या कारण है ? तैरने वाली नौकाओं में छेद न होने के कारण उनमें आनी आ नहीं सकता । छोटा-मोटा छेद होने से जो पानी सूराख

की यह अन्तर आ भी गया तो उसे बाहर फेंक जा सकता है। इसलिए ऐसी भीकारें न केवल स्वयं तैरती हैं अपितु दूसरे यात्रियों को भी पार ले जाती हैं। जो डूब गई हैं, धनमें डूब हो जाने से इतना पानी भर गया है कि वह अपने को पानी से ऊपर रख नहीं सकी। इस स्थिति में स्वयं तैरने का योग्य रही हैं और न दूसरों ही को पार ले जाने में समर्थ हैं। धन को नदी में झर्रांग लगाने में कोई हानि नहीं। लूब धन कमाएँ, परन्तु ध्यान रखिए कि धन का पानी मन में न जाने पाए। यदि यह बह गया तो फिर डूबना ही होगा। धन में हम तैरें धन हमारे ऊपर तैरने न सके। बस इतनी-सा बात से जीवन बिगड़ने की बजाय सुधरने लगता है। तब धन बेरुकर मोह या लोभ पैदा नहीं होता और जब मोह नहीं तो फिर आनन्द ही आनन्द है, मुक्त ही मुक्त है। एक बार एक शिष्य ने अपने गुरु से प्रश्न किया—

गुरु ने उत्तर दिया—“जिसेका हृदय शान्त है।”

“हृदय जिसेका शान्त है ?”

“जिसेका मन बचल नहीं ?”

‘मन जिसेका बचल नहीं ?’

‘जिसे किसी वस्तु की अभिरक्षा नहीं।’

‘अभिरक्षा जिसे नहीं है ?’

“जिसेको किसी वस्तु में आसक्ति नहीं।”

“आसक्ति जिसे नहीं ?”

गुरु जी ने शान्त-स्मित-मुद्रा से कहा—‘जिसेकी बुद्धि में मोह नहीं है।’

बहु मीठी कित्तु बह, पलका के-सकल

विश्वो बह न जाहिले को शारदपठिराह ॥

बह सब कुछ स्पष्ट हो जाने और बह मान्य हो जाने पर कि

ससार असार है और जिस शरीर में हमें रखा गया है, वह भी क्षण-भंगुर है, हमारा कर्तव्य यह हो जाता है कि अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए इस ससार और इस शरीर से जितना लाभ उठा सकें उठाए, और वह लाभ यही है कि अपनी मनोवृत्ति भगवान् के भक्तों की-सी बनाइए—

श्वास श्वास पर ओम् कह, पृथा जन्म मत खोय ।

क्या जाने इस श्वास को आवन हो न होय ॥

भगवान् की भक्ति में खोकर, शान्त और शीतल मन से ज़रा ध्यान लगा कर सुनिए—कवि कितने मधुर, आकर्षक-स्वर में आप को चेता रहा है—

सुमिरन कर मन ओम् नाम

दिन नीके बीते जाते हैं ।

पाप गठरिया सिर पर भारी, पग नहीं आगे जाते हैं ॥

मात-पिता पति कुल धन दारा, सग नहीं कोई जाते हैं ॥

दुनिया दौलत माल खम्बाना, काम नहीं उख आते हैं ।

सुमिरन कर मन ओम् नाम

दिन नीके बीते जाते हैं ॥



## परमगति कैसे मिलेगी ?

सर्वद्वाराणि सयम्य मनो दृदि निरुच्य च ।

मूर्ध्याधायात्मन प्राणमास्थितो योगधारणाम् ॥

श्रीमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।

य प्रयाति त्यजन्देह स याति परमां गतिम् ॥

( गीता—८—१२, १३ )

“सब इन्द्रियों के द्वारों को रोककर ( अर्थात् इन्द्रियों को विषयों से हटाकर ) तथा मन को हृद्देश में स्थिर करके और अपने प्राण को मस्तक में स्थापन करके, योगधारणामें स्थित हुआ, जो पुरुष ॐ इस एक अक्षररूप ब्रह्म का उच्चारण करता हुआ, और उसीका चिन्तन करता हुआ शरीर का त्याग कर जाता है, वह पुरुष परम-गति को प्राप्त होता है।”

परन्तु यह अवस्था अन्त समय में तभी प्राप्त हो सकती है जब जीवन-काल में इसका अभ्यास किया हो। अतएव सौ काम छोड़ कर भी इसका अभ्यास करो।



---

## दुखों का नाश कैसे होगा ?

एक अमरनाथस्य वैदिकव्यक्तिः पापयः ।

एतः वैदिकविद्वान् दुःखयन्त्रे अविष्करी ॥ ( श्लोक १-० )

अप्यस्य जगत्सु सर्वेषु भावनासु को लोके मन्त्रे, एतन् प्रसु के  
जाने विना दुःख का अन्त होगा ।

---

## भगवान् का मन्दिर

ज्यू तिल माँही तेल है, ज्यू चक्रमक में आग ।

तेरा प्रभु तुम्ह में बसे, जाग मके तो जाग ॥

यह तो भगवान् का मन्दिर है। पता नहीं इसे मनुष्य-शरीर का नाम क्यों दे दिया गया है। यही वह स्थान है, जहाँ सचमुच परमात्मा के दर्शन किए जा सकते हैं। निस्सन्देह, परमात्मा सर्वव्यापक है, ससार के अणु-अणु में वह इसी प्रकार रमा हुआ है, जैसे हर वस्तु में अग्नि विद्यमान है। अग्नि का किसी भी स्थान पर आह्वान कीजिए, उसे प्रकट करने के साधन एकत्रित कीजिए, वह प्रकट हो जायगी। परन्तु परमात्मा हर स्थान और हर वस्तु में होते हुए भी हर जगह दृष्टिगोचर नहीं हो सकता। उसके दर्शन केवल इस मन्दिर में ही हो सकते हैं। इसका कारण यह है कि परमात्मा को देखने वाला नेत्र केवल इसी मन्दिर ही के भीतर खुलता है। परमात्मा और जीवात्मा का मिलाप यहीं भली भाँति होता है। यही होता है सगम इन दोनों का। यही है वह मन्दिर, जिसके सब बाह्य-द्वार बन्द कर जब मन भीतर बैठेकाग्र और निर्विषय हो जाता है, तब वह प्रकाश स्वयमेव प्रकट हो जाता है, जिसे देखने की उत्कण्ठा तथा लालसा आत्मा को इस बन्दी शरीर में ले आती है। इस ज्योति को देखने से कैसा आनन्द प्राप्त होता है—इसका वर्णन नहीं किया जा सकता। यह तो वह स्वाद है, जिसे स्वयं ही अनुभव किया जा सकता है। किसी के

बतलाने का न वह विषय ही और न बतलाना ही जा सकता है ।

शुचि वात्सल्य एक बार योगेश्वर श्री वाचक के योगप्रश्न में पहुँचे और प्रार्थना की—“मगवान् । उचिदानन्व परब्रह्म का स्वरूप आपने देखा है, उसका बख्त कीजिए कि वह स्वरूप कैसा है ?”

वाचक महाराज चुपचाप बैठे रहे, कुछ बोले नहीं । बोधी देर का श्रुति वात्सल्य ने फिर बही प्रश्न किया । अब भी वह चुप्पी ही खिंचे रहे । तीसरी चौथी बार भी यही प्रश्न किया और उत्तर भी नहीं—मौन ही मिला । बार-बार एक ही प्रश्न दोहराते हुए जब वात्सल्य श्रुति उकता गये तो कहने लगें—“मेरी जिज्ञासा का उत्तर देकर मेरे हृत्-हृदय को आप शान्त क्यों नहीं करते ? तब योगेश्वर वाचक कुछ मुत्सुरा कर बोले “अरे वात्सल्ये ! तेरे प्रश्नों का उत्तर तो साथ ही साथ उत्तर देता रहा हूँ । यदि तेरी मस्तिष्क में न आप तो इसमें मेरा क्या दोष । भाई ! स्वप्न कोई बाष्पी से बचकाने वाली वस्तु नहीं । वहाँ तो सब बाष्पियों पहुँच कर मौन साथ खींचे हैं और जब सौटकर आती हैं तो कुछ भी बोझने में असमर्थ होती हैं । इस गूँगे के गुड़ का स्वाद कैसे बतलाया जाय ?” और निश्चय ही वह स्वाद इस मन्दिर में ही मिलता है उसार की और किसी वस्तु में नहीं ।

ज्ञानयोग्य-रूपमिपद् के अन्तिम प्रसठक के आरम्भ में ‘ब्रह्मपुर’ का बख्त किया गया है । ब्रह्म तो सर्वत्र है और सर्वव्यापक है, फिर उसकी कोई पुरी कैसे हो सकती है । हाँ वह मनुष्य शरीर ही उसकी नगरी है, इसी से ब्रह्म को पहचानने वाला रहता है । ज्ञानयोग्य के इन शब्दों पर ध्यान दीजिये श्रुति कहता है । जन्मोन्म ११२ ।

अद्वैतब्रह्म ब्रह्मुरे बहुरूपवरीषं वैरम बहुरीऽभिन्नतरुण्यतः ।

किं तत्र विद्यते अन्वैज्यं व्याप विविधासितम्भिति ॥

“यह जो ब्रह्मपुर ( शरीर ) है, इसमें एक छोटा स्र ( हृदय ) कपल का मन्दिर है, इस ( मन्दिर ) के भीतर एक छोटा-सा आठारा

है। इस आकाश के भीतर जो कुछ है, उसका अन्वेषण करना चाहिए, उसकी जिज्ञासा करनी चाहिए।" यही "कमल का मन्दिर" भक्त और भगवान् का मिलाप-स्थान है और वह इसी ब्रह्मपुर या शरीर के ही अन्दर है, इसी स्थान पर उमकी खोज करनी होती है। इसी स्थान का नाम वह 'गुहा' है, जिसके सम्बन्ध में यजुर्वेद (३२।८) कहता है कि "विनस्तन् परश्रित्तिशुशुता" अर्थात् धानी पुरुष उम मत्त ब्रह्म को हृदय की गुहा में निहित देखता है। यही बात अथर्ववेद के दूसरे काण्ड के पहले ही मन्त्र में कही है— "विनस्तदपश्यत् परम गुहा यद्यत्र विश्व भवत्येकस्मिन् ।" योगी उसे परम गुहा में देखता है, वहाँ सारा विश्व एक रूप हो जाता है, अर्थात् भक्त के लिए फिर प्रभु के अतिरिक्त और कोई भी वस्तु देखने योग्य नहीं रहती यही है वह ब्रह्मपुर, जिसका उल्लेख मुडक-उपनिषद् में इन शब्दों में किया गया है—

य सर्वज्ञ सर्वविद् यस्यैव महिमा भुवि ।

दिव्ये ब्रह्मपुरे छोप ज्योम्न्मात्मा स प्रतिष्ठित ॥ (सु० उ० २।२।७)

जो सबको जानता है और सबको समझता है, जिसकी इस भूमि पर (प्रत्यक्ष) महिमा है, वह आत्मा दिव्य ब्रह्मपुर (हृदय) हृदयाकाश में रहता है।

स्वर्ग भी इसीको कहा जाता है। स्वर्ग संसार का कोई विशेष स्थान नहीं है अपितु इसी शरीर के अन्दर ही वह स्वर्ग विद्यमान है।

देवताओं का दुर्ग—

वेद-भगवान् ने तो स्वर्ग का बहुत ही सुन्दर और विस्तृत विवरण दिया है—अथर्व० (१०।२।३१)

अष्टाचक्रं नवद्वारा देवानां प्रयोध्या ।

तस्यां हिरण्यय कोश स्वर्गो ज्योतिषाऽऽश्रित ॥

यह देवताओं का दुर्ग, जिसके आठ चक्र और नौ द्वार हैं और

द्विस्तम्भे जीविना दुष्कर है, उम्में म्योति से मरपूर लगा है और क्सी में सुनहरी कोप है। यह भाठ बकों और नौ द्वारों वाली अयोध्या नगरी पोरुप अमरीक्य परिना मारध अथवा अन्तरिक्ष सोफ पा पुत्रोक में सो क्सी दिक्कलाई नही बेठी, अपिसु यह नगरी हर देश, हर नगर, हर माम और हर घर के अन्धर बेकी जा सकवी है। यह है यही मनुष्य शरीर। मनुष्य-शरीर ही में नौ द्वार हैं—दो नेत्र दो नासिकाएं व। कान, एक मुल, दो मलमूत्र त्यागने के स्थान—यह नौ द्वार इस नगरी के स्पष्ट दिक्कलाई बेते हैं। और भाठ बक—यह मी इसी शरीर में है, इठयोग के बिद्यानों का कवन है कि इस शरीर में निम्न भाठ बक हैं। इन के द्वार प्राय ऊपर बहस्य हुमा मल-द्वार में प्रवेश कर सकधा है—

- |              |                   |
|--------------|-------------------|
| १ मूलाधार बक | २ त्वाक्विष्ठल बक |
| ३ मणिपूरक बक | ४ अनाहत बक        |
| ५ इरण बक     | ६ त्रिपुट्टि बक   |
| आज्ञा बक     | ७ कण्ठ बक         |

पुत्रक बक गुहा स्थान पर हैं, वूमरा पेहू में वीसरा भागि में बीजा इरण के निरुट्ट पोंबनों इरण क अन्धर जूठा कण्ठ में साठवाँ अ मध्य और भाठनों शिक्का के नीचे।

अब अण के इरान करने होते हैं सो इस नगर क बाहर के सब द्वार बन्द करके इन भाठ बकों में से होकर अर्गे के अन्धर पहुँचना होता है। तब बहों म्योति दिक्कलाई बेठी है, और बहो अपन परम प्रिय का इरान बेठ है।

मन्दिर की सफाई—

बेद-भगवान् तथा अपनिपहू ने अब बठस्य बिबा कि मनुष्य का शरीर ही भगपाम् का मन्दिर है, चिर किसी आलिक को इरमें मन्वेह नही रह जात और निरुप ही में यह निवेदन केवल आलिक

भक्तों के ही सम्मुख रख रहा हूँ। भगवान् के इस मन्दिर में पूजा और भक्ति के लिए जाने से पूर्व अत्यन्त आवश्यक है कि मन्दिर की सफाई की जाय। पूजा-पाठ का स्थान स्वच्छ ही होना चाहिए। सफाई दो प्रकार की है, बाह्य और आन्तरिक। बाह्य सफाई स्वच्छ जल इत्यादि से हो जाती है, परन्तु आन्तरिक सफाई के लिए विशेष प्रयत्न करना होता है। उसके कुछ नियम यह हैं—

प्रातः ४ बजे विस्तर से अवश्य उठ जाने का नियम बना लेना चाहिए, और फिर शौच आदि से निवृत्त होकर दाँत साफ करने चाहिए। फिर व्यायाम, आसन इत्यादि करने चाहिए, जिनसे शरीर विलकुल थक तो न जाय, परन्तु इसके प्रत्येक अङ्ग में स्फूर्ति अवश्य आजाय। फिर स्नान करना चाहिए। यदि आवश्यकता हो तो स्नान के पश्चात् व्यायाम करने का नियम बनाया जा सकता है। पेट की सफाई की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। यदि वैसे पेट भली भाँति साफ न हो तो भोजन में ऐसा परिवर्तन कर देना चाहिए, जिससे पेट साफ हो जाय। जिनका पेट प्रतिदिन ठीक तरह साफ नहीं होता, उनको हाथ की चक्की से पिसे हुए मोटे आटे की रोटी खानी चाहिए। आटे को छानना नहीं चाहिए, हरी तरकारियों का प्रयोग अधिक करना चाहिए, दूध अधिक पीना चाहिए और घी में भुनी हुई हरीतकी (हरड) का सेवन करना चाहिए। जिनका पेट इन बातों से भी साफ न हो, वह फिर महीना में एक दो बार वस्ति (अनीमा) कर लिया करें।

### नाड़ी-शुद्धि

पेट की शुद्धि के पश्चात् नाडी-शुद्धि की बागी आती है और इसके लिए नाना प्रकार के प्राणायामों से बतलाये गये हैं। भस्त्रिका<sup>१</sup> प्राणायाम से नाडियों के मल नष्ट होते हैं।

१ जिस प्रकार धोक्नी में वायु भरी और निकाला जाती है, उसी प्रकार भस्त्रिका होता है। नासिकाओं के द्वारा पहले शनैः शनैः और फिर तेजी के साथ

देवक कुंभक पूरक से पायला शक्ति मनुती है, और धागा छोटी  
 तथा अस्मिन्मूरम मादियों क होय दूर होत है परन्तु आरम्भ करन से पूर  
 इनकी विधि मीन्य जनी थाइय। हौं, इम बात का प्याम रगना थाइय  
 कि प्राणायाम मीन्यन-मीन्यन यही विधी इन्धी क जात में पंम न  
 जाँय। अजकल्प याग-विद्य के नाम पर यकी छरी हो रही है, और  
 मध्य-ममात्र में भी बुद्ध एम हाग पुम थाय है। जिन्होंन छितन ही  
 प्रनु-प्रमियों को मत्ता का गेगी मा बना दिया है। यह लोग इत्योग क  
 बुद्ध एम प्रवाग करत हैं। जिनम भगवान् क इम मन्दिर वा मत्ता  
 मय्य हो जा ऽ है। अ एर कस बचन थाइय और यह ममभ मता  
 थाइय कि भगवान् क मन्दिर की मझई का बब यह नही कि मन्दिर  
 ही को गिरा दिया जाण। यागद्वारम के सापन-याद् में लिग है—  
 “जब मनुष्य प्राणायाम करत है क प्रश्रयण इतगेत्तर काल में  
 अशुद्धि का नाश और ज्ञान का प्रभारा होत है।” इमीप्रभर भगवान्  
 मनु न भी विषय है कि—“जैसे अग्नि में लपने स मुख्यादि पानुओं  
 का मल मत्त होकर शुद्ध होता है, वैसे ही प्राणायाम से इन्द्रियों क  
 मल होय क्षीण होकर निमल हो जात है।”

कपरी जपती पाल निण जाते हैं। एक एक में एक म्मिटर के अन्ध  
 मन्त्रिका की करवा थाइय और केवल ऐमे रवान पर बैठ कर अन्त्रिका  
 का सम्मान करवा थाइय, यही का शुद्ध बनु हा और यही अन्ध  
 क ही। इनकी विधि यह है—नज्जम्ब वा सिद्धम्ब लवकर  
 अन्त्रिका करे पीछ करर मज्जम्ब रके मुख बन्ब एके दोन्ने मन्त्रिका  
 में पूरक करे दो जिहा कुंभक फिर देवक करे। १-१२ २ बार पैसा करके फिर  
 ज्ञान को कर में रोक्कर कुंभक करे और फिर लौं। इसा निराला यहाँ  
 मन्त्रिकाओं में बाम निचारी और फिर अन्त्रिका आरम्भ कर है। जब मन्त्रिका हीने  
 जाने लगे होय है।

हठयोग-प्रदीपिका में आठ प्रकार के कुम्भक प्राणायाम बतलाए हैं—

सूर्यभेदनमुज्जायी सीत्कारी शीतली तथा।

भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा प्राविनीत्यष्ट कुम्भका ॥

“सूर्य-भेदन, उज्जायी, सीत्कारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा, प्राविनी, यह आठ प्रकार के कुम्भक प्राणायाम जानने चाहिए।”

अब इनकी कुछ विधि सुनिए—

**सूर्य-भेदन—**

पिंगला नाड़ी (चन्द्र स्वर) से वायु अन्दर खींचे और कुम्भक करे, पूरे वल के साथ पेट में वायु भर ले, फिर इड़ा नाड़ी (सूर्य स्वर) से शनै शनै पवन छोड़े।

इससे मस्तक शुद्ध होता है, ८० प्रकार के वात-दोषों को हरता है, उदर के कृमि नष्ट करता है। यह उष्ण प्राणायाम है।

**उज्जायी—**

दोनों नासिकाओं से पूरक करे (प्राण अन्दर खींचे), हृदय पर्यन्त पवन चली जाय तब दोनों नासिका बन्द करके जालन्धर-बन्ध<sup>१</sup> करे। कुम्भक करे, फिर चन्द्र स्वर से रेचक करे, रेचक करने से पूर्व पवन मुस में ले आए।

इससे शरीर के सम्पूर्ण धातुओं के दोष नष्ट होते हैं, सौंदर्य बढ़ता है। यह उष्ण प्राणायाम है।

**सीत्कारी—**

दोनों ओठों के मध्य में लगी हुई जिह्वा से “सी” का शब्द करता हुआ मुख से पवन को अन्दर खींचे, और फिर कुम्भक करके

<sup>१</sup> जालन्धर-बन्ध की विधि यह है कि पेट में वायु भरकर अपनी ठोड़ी को हटता से छाती के साथ लगा दे।



दोनों नामिकाओं से रेचन करे। यह प्राणायाम बार-बार करने से रूप-रस-वर्ण बढ़ा है, यह शीतल प्राणायाम है।

शीतली—

घोड़ों में बाहर निकला हुई जिह्वा को पश्चात् का वायु से समान बनाकर वायु का आकषण करके नामिका के जिह्वों से शनैः शनैः रेचन करे।

अथ पित्त रूपा को दूर करता है। यह शीतल प्राणायाम है।

मस्तिष्क—

कोई भी ध्यान लगाकर भस्त्रिका करे। प्रोवा और उदर समान रहे, मुख बन्द रहे, दोनों नामिका से पूरक करे और बिना कुम्भक किए रेचन करे। सोहार का घीकनी के समान पूरक रेचन करे, १०-१५-२ बार करके फिर पूरक करके कुम्भक करे और फिर शनैः शनैः इच्छा पिंगला से पवन छोड़ दे। और पुनः पूरक रेचन आरम्भ करे, फिर १०-१५ बार करके कुम्भक करे और फिर शनैः शनैः पवन छोड़ दे। वात पित्त कफ को दूरता है, आठरुमि को बढ़ाता है।

आमरी—

अमर के समान शब्द कृत हुए वेग से नामिकाओं द्वारा पूरक करके कुम्भक करे और फिर रेचन। इससे पित्त में आगन्ध की वृद्धि होती है।

मूषा—

पूरक करके आस्यर-बन्ध लुप्त हो रीति से लगान और फिर वायु, वाहुं धीरे धीरे छोड़े। इससे मन की मूषा होती है।

प्लाबिनी—

पवन को लावा वायु देता पवन उदर में आकर उदरक आवाग लव उद्वान से इसे निकाल विधा वायु। यह आठ प्राण-

याम प्रतिदिन करने चाहिए। यह शरीर की सारी नाडियाँ शुद्ध करने में बहुत सहायक होते हैं।

### मन की शुद्धि—

नाडी-शुद्धि के अतिरिक्त मन की शुद्धि भी आवश्यक है। उपनिषद् में बतलाया है कि मन अन्न से बनता है। वैसे तो सारा शरीर ही अन्न से बनता है, परन्तु शरीर अन्न के स्थूल भाग से बनता है और मन सूक्ष्म भाग से। जिस भावना अथवा जिस साधन से अन्न कमाया जायगा, उसका सूक्ष्म प्रभाव मन पर अवश्य पड़ेगा। यदि अन्न कमाने में भूठ, दम्भ, मफ़ारी या पर-पीड़ा को काम में लाया गया है तो उस अन्न के खाने वाले के मन पर वैसा ही प्रभाव पड़ेगा। यह प्रभाव शीघ्र ह्रात हो या न हो, परन्तु किसी न किसी समय यह प्रभाव जागृत होकर मनुष्य को वैसे ही कर्म करने पर बाधित कर देता है, यह निश्चित बात है। यह खोटे अन्न ही का तो प्रभाव था, जिसने भीष्म पितामह जैसे व्रतधारी ब्राह्मण-चारी को विवश कर दिया कि वह सत्य और न्याय का पक्ष छोड़ कर अत्याचारी दुर्योधन का साथ दे। भीष्म पितामह ने स्वयं महाभारत में अन्न के इस प्रभाव को माना है। इसलिए मन की शुद्धि के लिए सबसे पहली आवश्यक बात यह है कि हमारा अन्न शुद्ध हो, यह धर्म तथा अपने बाहु-बल से कमाया गया हो। इसके साथ अन्न ऐसा खाया जाय जो विकार पैदा करने वाला न हो, तामसिक न हो। जो लोग लाल मिरचें तथा चाय<sup>१</sup>-काफी इत्यादि का अधिक प्रयोग करते हैं, उनके स्वभाव में कड़ुवापन बढ़ जाता है, सहनशीलता कम हो जाती है और उनका मन अधिक चञ्चल हो उठता है, वह देर तक एक ही आसन में बैठ नहीं सकते। इटली के भक्त पाइथा-गोरस (Pythagoras) का यह सिद्धान्त था कि

१ औषधिरूप में चाय काफी का प्रयोग निषिद्ध नहीं और शीत-प्रधान देश में इनका सेवन हानिकर नहीं।

दोनों नासिकाओं से रेचन करे। यह प्राणायाम बार-बार करने से रूप-प्राणरस बढ़ता है, यह शीतल प्राणायाम है।

**शीतली—**

ओष्ठों से बाहर निकलो। दुई बिन्दा को पक्षों की चञ्चु के समान क्वाकर वायु का आरूपण करके नासिका के छिद्रों से शनै शनै रेचक करे।

ज्वर, पित्त रुबा को दूर करता है। यह शीतल प्राणायाम है।

**मखिका—**

कोई भी आसन क्वाकर मखिका करे। मोबा और ज्वर समान रहे, मुस बन्ध रहे, दोनों नासिका से पूरक करे और बिना कुम्भक किए रेचन करे। जोहार की धौकनी के समान पूरक रेचन करे, १०-१५-२० बार करके फिर पूरक करके कुम्भक करे और फिर शनै शनै इडा पिंगल से पवन छोड़ दे। और पुनः पूरक रेचक आरम्भ करे फिर १०-१५-२० बार करके कुम्भक करे और फिर शनै शनै पवन छोड़ दे। बाठ पित्त कफ को डरता है, आन्त्राग्नि को बढ़ा है।

**आमरी—**

धमर के समान शब्द करत हुए वेग से नासिकाओं द्वारा पूरक करके कुम्भक करे और फिर रेचक। इससे चित्त में आनन्द की वृद्धि होती है।

**मूषा—**

पूरक करके आत्मन्धर-बन्ध सुब दृढ़ रीति से लगप और फिर वातु, बहुत धीरे धीरे छोड़े। इससे मन की मूषा होती है।

**प्लाविनी—**

पवन को लावा वायु ऐसा पवन ज्वर में आकर ठहरा आनन्द का च्वाक से इसे निकास दिवा वायु। यह बाठ प्राण-

याम प्रतिदिन करने चाहिए। यह शरीर की सारी नाड़ियाँ शुद्ध करने में बहुत सहायक होते हैं।

### मन की शुद्धि—

नाडी-शुद्धि के अतिरिक्त मन की शुद्धि भी आवश्यक है। उपनिषद् में बतलाया है कि मन अन्न से बनता है। वैसे तो सारा शरीर ही अन्न से बनता है, परन्तु शरीर अन्न के स्थूल भाग से बनता है और मन सूक्ष्म भाग से। जिस भावना अथवा जिस साधन से अन्न कमाया जायगा, उसका सूक्ष्म प्रभाव मन पर अवश्य पड़ेगा। यदि अन्न कमाने में भ्रूठ, दम्भ, मक्कारी या पर-पीड़ा को काम में लाया गया है तो उस अन्न के खाने वाले के मन पर वैसा ही प्रभाव पड़ेगा। यह प्रभाव शीघ्र ज्ञात हो या न हो, परन्तु किसी न किसी समय यह प्रभाव जागृत होकर मनुष्य को वैसे ही कर्म करने पर बाधित कर देता है, यह निश्चित बात है। यह खोटे अन्न ही का तो प्रभाव था, जिसने भीष्म पितामह जैसे व्रतधारी ब्राह्मण-चारी को विवश कर दिया कि वह सत्य और न्याय का पक्ष छोड़ कर अत्याचारी दुर्योधन का साथ दें। भीष्म पितामह ने स्वयं महाभारत में अन्न के इस प्रभाव को माना है। इसलिए मन की शुद्धि के लिए सबसे पहली आवश्यक बात यह है कि हमारा अन्न शुद्ध हो, यह धर्म तथा अपने बाहु-बल से कमाया गया हो। इसके साथ अन्न ऐसा खाया जाय जो विकार पैदा करने वाला न हो, तामसिक न हो। जो लोग लाल मिरचें तथा चाय<sup>१</sup>-काफी इत्यादि का अधिक प्रयोग करते हैं, उनके स्वभाव में कड़ुवापन बढ़ जाता है, सहनशीलता कम हो जाती है और उनका मन अधिक चञ्चल हो उठता है, वह देर तक एक ही आसन में बैठ नहीं सकते। इटली के भक्त पाइथा-गोरस (Pythagoras) का यह सिद्धान्त था कि

१ औषधिरूप में चाय काफी का प्रयोग निषिद्ध नहीं और शीत-प्रधान देश में इनका सेवन हानिकर नहीं।

दोनों नासिकाओं से रेचन करे। यह प्राणायाम बार-बार करने से रूप-आयु बढ़ता है, यह शीतल प्राणायाम है।

**शीतली—**

धोषों से बाहर निकली हुई बिछा धो पत्रों की चंचु फ समान कुम्भक वायु का आकर्षण करके नासिका के छिद्रों से शनै शनै रेचन करे।

ज्वर पित्त रुचा को दूर करता है। यह शीतल प्राणायाम है।

**मस्तिष्का—**

कोई भी आसन बनाकर भस्त्रिका करे। मोबा और ज्वर, समाप्त रखे, मुक्त बन्ध रहे, दोनों नासिका से पूरक करे और बिना कुम्भक फिर रेचन करे। लोहार की धौकनी के समान पूरक रेचन करे, १०-१५-२० बार करके फिर पूरक करके कुम्भक करे और फिर शनै शनै इडा पिंगल से पवन छोड़ दे। और पुनः पूरक रेचन आरम्भ करे फिर १०-१५ २ बार करके कुम्भक करे और फिर शनै शनै पवन छोड़ दे। बाँध पित्त कफ को दूरता है, आठरुमि को बढ़ाता है।

**आमरी—**

भ्रमर के समान शब्द करत हुए वेग से नासिकाओं द्वारा पूरक करके कुम्भक करे और फिर रेचन। इससे चित्त में आनन्द की वृद्धि होती है।

**मूष्या—**

पूरक करके आसुन्दर-बन्ध लुब्ध रीति से क्षण्य और फिर वायु, बहु बार पीरे छोड़े। इससे मन की मूष्या होती है।

**प्लाविनी—**

पवन को खावा वायु संसा पवन उदर में जाकर टहरता आसुन्दर तब उद्घान्त से इसे निकाल दिया जाय। यह आठ प्राणायाम

याम प्रतिदिन करने चाहिए। यह शरीर की मारी नाडियाँ शुद्ध करने में बहुत महायुक्त होते हैं।

**मन की शुद्धि—**

नाडी-शुद्धि के अतिरिक्त मन की शुद्धि भी आवश्यक है। उपनिषद् में बताया है कि मन अन्न से बनता है। वैसे तो सारा शरीर ही अन्न से बनता है, परन्तु शरीर अन्न के स्थूल भाग से बनता है और मन सूक्ष्म भाग से। जिस भावना अथवा जिस साधन से अन्न रमाया जायगा, उसका सूक्ष्म प्रभाव मन पर अवश्य पड़ेगा। यदि अन्न रमाने में भूठ, दम्भ, मफारी या पर-पीड़ा को काम में लाया गया है तो उस अन्न के खाने वाले के मन पर वैसे ही प्रभाव पड़ेगा। यह प्रभाव शीघ्र ज्ञात हो या न हो, परन्तु किसी न किसी समय यह प्रभाव जागृत होकर मनुष्य को वैसे ही कर्म करने पर बाधित कर देता है, यह निश्चित बात है। यह खोटे अन्न ही का तो प्रभाव था, जिसने भीष्म पितामह जैसे व्रतधारी बाल-मछलकारी भी विरग कर दिया कि यह सत्य और न्याय का पक्ष छोड़ कर अन्यायानु दुर्योधन का साथ दे। भीष्म पितामह ने स्वयं साक्षात्कार में अन्न के इस प्रभाव को माना है। इसलिए मन की शुद्धि के लिए सबसे पहली आवश्यक बात यह है कि हमारा अन्न शुद्ध हो, यह धर्म तथा अपनं काहु बल से रमाया गया हो। इसके सार अर्थ ऐसा रमाया जाय जो विकार पैदा करने वाला न हो, सामान्य न हो। जो लोग ज्ञान मित्रों का साथ नहीं लिया है, उनके अर्थ प्रयोग करते हैं, उनके अर्थ प्रभाव से कहुवापन बट जाना है, महानरुण। इस ही ज्ञानी है और इसका मन अधिक अन्न हो उठता है या देर न पार ही आसन में बैठ नहीं सकते। अतः के एक पाश्चात्तोरम (Pythagoras) का यह सिद्धान्त था कि

शरीर के लिए जो नष्ट करने वाले अन्न हैं, उन्हें न खाने चाहिए और जो नष्ट करने वाले हैं, उन्हें खाने से बचना चाहिए।

यजुष्य का मन इन वस्तुओं पर निर्भर है, जो मोजन द्वारा उसके पेट में जाती हैं।

मन की शुद्धि का कर्मण्य क्याय यह है कि इनको पुरे संघर्षों तथा बिचारों से बख्शा रखा जाय। मन एक ऐसी शक्ति है, जो कमी भी चुपचाप होकर बैठ नहीं सकती। इसीलिए इसे गीता में "अथ कथं प्रयत्नं कर्माय वाच्यं" कहा गया है। यह निश्चल हो होकर नहीं इसे बिचारों से शून्य करने के लिए भी बहुत कर्मण्य समय लागेगा। इस-लिए पहले मन को धाम-सङ्घर्षों में छापना चाहिए। यजुष्य के श्रद्धा-अभ्यास में इसीलिए का ऐसे मन्त्र आते हैं, जिनमें बारम्बार वही प्रार्थना है कि "उभे मन शिखंश्वरस्य" अर्थात् मेरा मन सदा शिख-संघर्ष वात्ता हो।

जब सत्-सङ्घर्ष तथा सुबिचार मन में काय जाएंगे तो फिर छोटे बिचार मन में कोई स्थान न पाकर स्वयमेव छूट जाएंगे।

श्रीराम-इति नैवम कथी पर-इति चो उवाच।

यदी वराय रथीम इति वाय पवित्र चिर धन ॥

**प्रश्नार्थ—**

इसप्रकार जब मन्दिर के बाहर और मीठर की समझी हो जाती है, तब इस मन्दिर में बैठ कर मगधान् की आराधना का अधिकार भक्त को प्राप्त हो जाता है, तब वह प्रभु-भक्ति के महान् द्वार में प्रवेश करता है, तब वह अन्तर्गत होता है, प्रभु के समीप बैठता है और मगधान् के निकटतर हो जाता है। परन्तु इन सब बातों के साथ यह आवश्यक बात सदा अपने सम्मुख रखनी चाहिए कि प्रभु-मन्दिर की धर्म प्रशस्ति हैं। जो लोग अपने शरीर के बाह्य-वस्त्र और बाहर को बाहर फेंकते रहते हैं, और इसी रक्षा नहीं करते वह अपनी इस नाशनी पर रोपते, वह बाह्यिक झूठे तथा कल्पित 'आत्म' के लिए अपना अन्तर्मोक्ष रज गँवा रहे हैं, वह अपने हाथों से अपने

पाँव पर कुल्हाड़ा चला कर अपना सत्यानाश फर रहे हैं। वीर्य शरीर में मन, और प्राण ही को नहीं अपितु आत्मा को भी शक्ति देने वाली वस्तु हैं। इस शरीर में आत्मा को यदि कुछ प्राप्त हो सकता है तो वीर्य ही से। आत्मा है सूक्ष्म, यह किसी स्थूल वस्तु को तो ग्रहण करेगा नहीं, हाँ, सूक्ष्म को ग्रहण करेगा, और यह सूक्ष्म-तत्त्व वीर्य ही से बनता है। जब इसका भण्डार शरीर में जमा हो जाता है तो इसका फिर इत्र खिंचता है और उससे ओज पैदा होता है। यह ओज एक सूक्ष्म-तत्त्व है, जिसे आत्मा ग्रहण करता है और महा-बलवान् होकर ओजस्वी बन जाता है। ओजस्वी आत्मा ओजस्वी परमात्मा की मित्रता का अधिकारी बनकर उसके वरावर बैठने के लिए कदता है—

ओजोऽसि ओजो मयि देहि ।

अतएव, प्रभु-मन्दिर के इस मूल-तत्त्व की ओर विशेष ध्यान देना होगा। स्थूल-भोजन या अन्न का किस प्रकार सूक्ष्म-तत्त्व बनता है, उसकी विधि यह है —

जो अन्न खाया जाता है उसको तेजाव जीर्ण कर देता है और जाठराग्नि से पक रम बनता है, रस फिर रक्त में परिवर्तित होता है। रक्त का इत्र खिंचता है तो फिर माँस बनता है, माँस से मेद, मेद से अस्थि, अस्थि से मज्जा और मज्जा से वीर्य। इस वीर्य की मात्रा बहुत थोड़ी होती है। यदि इसे शरीर में सम्भाल कर रखा जाय, बुरे विचारों, गन्दी कहानियों और अश्लील मिनेमात्रों से इसे बचाया जाय, और इसका रुख नीचे की बजाय ऊपर को किया जाय, तब यह वीर्य बहुत देर के पश्चात् परिपक्व हो कर 'ओज' बनने लगता है। ओज भी दो प्रकार का होता है। एक 'पर-ओज', दूसरा 'अपर-ओज'—यह ओज अन्त में सूक्ष्म हो जाता है और आत्मा के काम आता है। वेद भगवान् ने तो ब्रह्मचर्य को भी प्रभु-प्राप्ति का बड़ा साधन बतलाया है।



और स्वामी इमान्द्व जो ने किया है कि जो गृहस्था निवमस्तुकूल  
 चलते हुए धर्म-मर्यादा में रहते हैं, उनकी गलना ब्रह्मचारियों में हो  
 होती है। इदयोग-प्रवापिभ्य में किया है— 'मरणं विन्दुयतेन जन्म  
 विन्दुवारकाल — विन्दु के पतन से मरण और विन्दु की रक्षा से  
 जीवन होय है।

ग्राम-उपनिषद् में किया है—

तन्मैत्रेय ब्रह्मसंन्या वेना तपो ब्रह्मसंन्या

वेतु सत्यं प्रतिष्ठितम् ॥ ( प्र १-१२ का अन्तर्गत )

जो ब्रह्मचर्य-चारण्य पूर्वक तप करते हैं, जो सत्य से विचलित  
 नहीं होते कभी जो इस शरीर में ही ब्रह्मचोक, ब्रह्मज्ञान प्राप्त होय है।

अतएव बीज्य की बहुमूर्त्यता को शोकत हुए इसे अपनी  
 आत्मा के लिए सुरक्षित रखना चाहिए।

जो है मन्वान के मन्दिर का मूलतत्त्व। इसके विरुद्ध से मन्दिर  
 विरुद्ध लगता है और जब मन्दिर विरुद्ध हमें तो पुनारी का लम्बाठ  
 सामने प्रकट-प्रकट करने लगता है। इतिरिष्ट पूरे का से इसकी रक्षा  
 करनी चाहिए।

## श्रद्धा-भक्ति का विधि

“जो मनुष्य सत्य, प्रेम भक्ति से परमेश्वर की उपासना करेंगे उन्हीं उपासकों को परम-रूपामय अन्तर्यामी परमेश्वर मोक्ष सुख देकर सदा के लिए आनन्दयुक्त कर देगा।” —दयानन्द

सत्यार्थप्रकाश के सातवें समुल्लास में स्वामी जी लिखते हैं—

“जो उपासना का आरम्भ करना चाहे उसके लिये यही आरम्भ है कि वह किसी से वैर न रखे, सर्वदा सबसे प्रीति करे, सत्य बोले, चोरी न करे, सत्य व्यवहार करे, जितेन्द्रिय हो, लम्पट न हो और निरभिमानी हो।”

यह तो हुई उपासना की तैयारी, परन्तु उपासना किस प्रकार करनी चाहिए—इसका वर्णन महर्षि इस प्रकार करते हैं—

“जब उपासना करना चाहे तब एकान्त शुद्ध देश में जाकर आसन लगा, प्राणायाम कर बाह्य विषयों से इन्द्रियों को रोक मन को नाभि प्रदेश में, हृदय, कण्ठ, नेत्र, शिखा अथवा पीठ के मध्य हाड़ में किसी स्थान पर स्थिर कर अपने आत्मा और परमात्मा का विवेचन करके परमात्मा में मग्न हो जाने से सयमी होवे। जब इन भावनों को करता है तब उसका आत्मा और अन्तःकरण पवित्र होकर सत्य से पूर्ण हो जाता है। नित्य प्रति ज्ञान-विज्ञान बढ़ाकर मुक्ति तक पहुँच जाता है। जो आठ पहर में एक घड़ी भर भी इस प्रकार ध्यान करता है, वह सदा उन्नति को प्राप्त हो जाता है।”

बजुर्वेद के पञ्चम ब्रह्मण्य के पाँचवें मन्त्र का भाष्य करते हुए स्वामी श्यामनन्द जी ने यह बतलाया है, कि—

‘योगाभ्यास के ज्ञान को चाहने वाले मनुष्यों को चाहिए कि योग में कुराख विद्वानों का सङ्ग करें उनके सङ्ग से योग की विधि को ज्ञान के ब्रह्म-ज्ञान का अभ्यास करें। जैसे विद्वान् का प्रशिक्षण किया हुआ मार्ग सबको मुक्त से प्राप्त हो। है वैसे ही योगाभ्यासियों के सङ्ग से योग-विधि स्वयं से प्राप्त होती है। कोई भी बीवात्मा इस सङ्ग और ब्रह्म-ज्ञान के अभ्यास के बिना पवित्र होकर सब मुक्तों को प्राप्त नहीं हो सकता। इसलिए उस योग-विधि के साथ ही सब मनुष्य परब्रह्म की कृपापना करें।

साध्य यह है कि योग-विधि के बिना कृपापना कब तक नहीं हो सकती और न ही ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त हो सकता है। योग-विधि क्या है? यह योग दर्शन<sup>१</sup> में बताया गया है। यदि कोई मनुष्य

१ योग के अठारह अंग बताये गए हैं—१ ध्यान २ विष्णु ३ ब्राह्मण ४ साक्षात्कार ५ चारणा ६ श्रद्धा ७ उपाधि ।

कर्म—१ कर्मिता २ ज्ञान ३ अस्तेय (चोरी न करना) ४ अहंकार ५ अहोरात्र (योग के कर्मों के इच्छा करने का ज्ञान न करना) ।

विष्णु—१ शीघ्र २ उत्तम ३ उप ४ स्वभ्यास ५ ईश्वर प्रशिक्षण (जब जब ईश्वरप्रेम) ।

ब्राह्मण—विद्वान्, सद्मन्, ब्रह्म ज्ञान धारि ।

साक्षात्कार—रेणु, दूर, अन्तर्, अन्विष्ट धारि ।

श्रद्धा—इन्द्रियों को निर्बल करना ।

चारणा—अस्ति का अन्वयण इत्येव वा मुक्ति में विरा को देखित करना ।

उपाधि—चारणा का अन्वयण करने देना ।

अहंकार—स्वयं करने कहे, स्वयं और अन्वयण का एक ही भाषा ।

अहोरात्र और अहोरात्र का फिर कोई भेद नहीं रहता ।

समझे बैठा है कि यम नियमों के पालन किए बिना और आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा और ध्यान को प्रयोग में लाए बिना ही वह प्रमु-दर्शन कर लेगा, तो वह भूलता है। थोड़ा बहुत जितना भी हो सके, इन साधनों की भट्टियों में से भक्त या उपासक को गुजरना ही पड़ता है। महर्षि दयानन्द ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका में लिखते हैं—“यह उपासनायोग दुष्ट मनुष्य को सिद्ध नहीं होता, क्योंकि जब तक मनुष्य दुष्ट कामों से अलग होकर अपने मन को शान्त और आत्मा को पुरुषार्थी नहीं बनाता तथा भीतर के व्यवहारों को शुद्ध नहीं करता, तब तक कितना ही पढ़े वा सुने उसको परमेश्वर की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती।”

जबतक मन यम-नियमों की मजिलें तय नहीं करता, तबतक भक्ति का अधिकार ही प्राप्त नहीं होता। मन की वृत्ति इस प्रकार की हो जानी चाहिए कि उसमें हिंसा के भाव न आए, वह चोरी का चिन्तन भी न करने पाए, सत्य और ब्रह्मचर्य पर आखूट रहे, लोभ में अधिक न फसे और शौच, सन्तोष तथा तप से अपनी वृत्ति भक्तों की-सी बना ले। ऐसी वृत्ति बनाने में ईश्वर पर पूर्ण भरोसा, उसी की इच्छा पर रहने का स्वभाव ढालना और वेद, उपनिषद्, गीता आदि का स्वाध्याय बहुत सहायक होते हैं।

इसके पश्चात् आसन की बारी आती है। कितने ही आसन तो केवल शरीर-रक्षा के लिए हैं और कुछ मन को एकाग्र करने के निमित्त। पद्म-आसन और सिद्ध-आसन विशेष रूप से प्रयोग में आते हैं। परन्तु आप चाहे किसी भी आसन में बैठें, सुख से बैठें, और वह आसन ऐसा हो, जिसमें आप बिना थकान के कम से कम ३॥ घण्टे बैठ सकें। कोई एक आसन ग्रहण कर लीजिए और उसीमें शरीर को बिना हिलाए कम से कम ३॥ घण्टे प्रति दिन बैठने का अभ्यास कर लीजिए। मन को स्थिर करने से पूर्व शरीर

को धबू करने की आवश्यकता है। जिसका शरीर ही बरा में नहीं उसका मन कदापि धबू नहीं आ सकता। एक ही भासन में निरन्तर ३॥ पद्ये निश्चल बैठने के अभ्यास के माध प्राणायाम को भी अभ्यास करना चाहिए। महर्षि ने छम्बेदादि-भाष्य मुनिना के उपासना-विषय में लिखा है—“जैसे मोहन के पीछे किसी प्रकार से बमन हो लाया है, जैसे ही भीतर के बाहु को बाहर निकाल के मुक्तपूर्वक जितना हो मटे उठना बाहर ही रोक दे। पुनः धारे-धारे भीतर सेकर पुनरपि ऐसे ही करे। इसी प्रकार बरंबार अभ्यास करने से प्राण असाक के बरा में हो जाता है और प्राण के स्थिर होने से मन मन के स्थिर होने से आत्मा भी स्थिर हो जाता है। इन तीनों के स्थिर होने के समय अपने आत्मा के बीच में जो आनन्दस्वरूप, अमरबामी स्वपद परमेश्वर है, उसके स्वरूप में मग्न हो जाना चाहिए। जैसे मनुष्य जल में गोता मारकर ऊपर आता है, फिर गोता लग्न जाता है, इसी प्रकार अपने आत्मा को परमेश्वर के बीच में बरंबार मग्न करना चाहिए।”

शरीर भासन से स्थिर होगा प्राण प्राणायामसे स्थिर होगा तो फिर मन का स्थिर हो जाना स्वाभाविक हो जाता है, क्योंकि प्राण के साथ मन का पतित सम्बन्ध है।

प्राणायाम—

प्राणायाम आरम्भ करने से पहले दोनों नासिकाओं को स्नान कराना आवश्यक है, नासिका-स्नान की विधि यह है कि हाथ पर या छोटे में जल सेकर नासिकाओं में श्वास द्वारा अमर जीबना चाहिए और फिर जल नाथे पैंक देना चाहिए। इस प्रकार पॉष-अ बाण कर देने से नासिकाएँ स्वच्छ हो जाएगी और बलवत्त्व कम हो जायगा। प्राणायाम भी सभी मर्षी मर्षि हो सकेगा।

भासन में बैठकर कमर और गर्दन सीधा रखनी चाहिए।

बहुत अधिक तन कर भी बैठना नहीं चाहिए। पहले चन्द्र (बाएँ) स्वर से श्वास ऊपर खींच कर सूर्य (दाँये) स्वर से छोड़ देने चाहिए। तब सूर्य में ऊपर खींच कर चन्द्र से छोड़ देना चाहिए। इस प्रकार मात-प्राण वार करने के पश्चात् दोनों स्वरों से प्राण अन्दर ले जाइए और नाभि तक अच्छी तरह भर लीजिए और आसानी के साथ जितना रोका जा सकता है, रोकिए। तब शनै शनै नाभिकाओं द्वारा ही प्राण को बाहर फेंक दीजिए और पेट वायु से सर्वथा गाली कर दीजिए। पेट वायु से गाली करते समय जननेन्द्रिय ऊपर की ओर खिंचनी चाहिए। प्राण बाहर फेंक कर फिर इन्हें बाहर ही रोके रहिए। जब मन धराने लगे तो धीरे-धीरे प्राण अन्दर भर लीजिए। प्राणायाम का सबसे सुगम तरीका यही है। इसीमें रेचक, पूरक तथा कुम्भक प्राणायाम हो जाते हैं। यह प्राणायाम बिना किमी से सीरे भी किया जा सकता है। इससे आगे फिर किसी सभ्य वीतराग गुरु की शरण लेनी आवश्यक है।

प्राणायाम कितने ही प्रकार के हैं। कुम्भक प्राणायाम का उल्लेख पहले कर दिया है इनमें से मुझे जो प्राणायाम करने का अवसर मिला है और जिनसे लाभ भी हुआ है, उनका उल्लेख यहाँ किए देता हूँ—  
**भस्त्रिका:—**

प्राणायाम का कुछ वर्णन पहले हो चुका है। यह लोहार की घाँकनी की तरह होता है। कमर गर्दन सीधे रखकर सिद्धासन में बैठकर मुख बन्द रखकर दोनों नासिकाओं से प्राण अन्दर खींचना होता है और फिर बिना रोके बाहर फेंकना होता है। बार-बार ऐसा करके फिर कुम्भक करके शनै शनै श्वास बाहर निकाल देने चाहिए।

**सूर्य-मेदन:—**

चन्द्र नासिका से वायु अन्दर खींचे और कुम्भक करे अर्थात् वायु को पेट में पूरे बल के साथ रोके रहे, फिर सूर्य नासिका से शनै

शनें पवन छोड़े। इन्से मखड़ की शुद्धि होती है।

उज्जायी प्राणायामः—

होना नासिकाओं से पूरक करे, मुँह बन्द रहे, नासिकाओं से मधुर ध्वनि भी करे, हृदय पर्यन्त पवन चली जाय तब दोनों नासिका बन्द करके आत्मधार-बन्ध (ठोड़ी को हृदय से ४ अंगुल ऊपर छाठी पर दृढ़ जग्रा रहे) करे, कुम्भक करे, फिर पत्र कर से रेषक करे, रेषक करन से पूर्व पवन मुँह में ले आये, परन्तु रेषक नासिका ही से करे।

केवल प्राणायाम—

रषक पूरक को छोड़कर मुँह से जो वायु-धारण करना है उसे केवल कुम्भक करते हैं, अर्थात् प्राण्य को जहाँ का वहाँ रोक देना। इससे वायु-शक्ति बढ़ती है।

प्राणायाम से जब प्राण्य स्थिर होने लगता है और प्राण के साथ मन भी अचलता छोड़ने लगता है, तो इन्द्रियाँ स्वयमेव ही धरु में आ जाती हैं, इसीको प्रत्याहार करते हैं।

जब वायु और ध्यान की बारी आती है। वायु के स्थिर हृदय में अबका प्रमथ्य में मन को स्थिर कीजिए और इतना मुँह जग्रा पद है कि हृदय अबका भ्रुकुटि में मन ही से ओं का अक्षर खिला हुआ देखिए और इसीप्रकार मानसिक रूप कीजिए। सुबहकोपनिषद् में बताया है कि—‘ओमित्येव’ ध्यायत आत्मानम् (ओं) ओंकार रूप से आत्मा का ध्यान करे, ओं ही मन्त्रान् का पवित्र नाम है, इसी रूप में अस्का ध्यान करने की आशा उपनिषद् में दी है, और कठोपनिषद् में भी तो यही कहा है—(क० क० १२।१३)

सर्वे वेदा वाचस्पत्यमन्त्रि लोमि वरुणि च बहवन्ति।

व दक्षन्तो मन्त्रान् वाचि, तौ वरुं संवेद्य वरुणोऽपि वेद्यम् ॥

सब वेद जिस पद का वर्णन करते हैं, समस्त त्यों को जिस

की प्राप्ति के साधक कहते हैं, जिसकी इच्छा से (मुमुक्षु-जन) ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, उस पद को मैं तुमसे सत्तेप में कहता हूँ, ॐ यही वह पद है ।

एतद्ध्येवाच्चर धम एतद्ध्येवाच्चरं परम् ।

एतद्ध्येवाच्चर ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥

कठ० १-२-१६

निश्चयरूप से यह अक्षर ॐ ही ब्रह्म है, यह अक्षर ही परम सबसे श्रेष्ठ है, इस अक्षर, ॐ, को जानकर जो पुरुष जिस वस्तु की कामना करता है, वह उसे प्राप्त हो जाती है ।

एतदालम्बन श्रेष्ठमेतदालम्बन परम् ।

एतदालम्बन ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥

कठ० १-२-१७

ओ३म् का यह आलम्बन (सहारा) श्रेष्ठ है, सबसे उत्कृष्ट है, इसी आलम्बन को जानकर मनुष्य ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठा को प्राप्त होता है ॥

इस ॐ का ध्यान तथा जाप विशेष लाभ देता है । इस जप में न जिह्वा हिले न कण्ठ, केवल मन ही से जाप हो । जब ॐ का अक्षर मन से हृदय अथवा भृकुटी में लिखा जायगा तो आरम्भ में वह शीघ्र मिटता दीखेगा, परन्तु आप उसे धार धार लिखने और देखने का प्रयत्न कीजिए । इस प्रकार अभ्यास से एक समय ऐसा आ जायगा कि वह ॐ स्थायी रूप में सुनहरी अक्षरों में लिखा हुआ दृष्टिगोचर होने लगेगा, तब वह न मिटेगा ।

जब यह अवस्था प्राप्त हो जाय तो समझिए कि ध्यान लगाने लगा है । ऐसी अवस्था में एक ऐसा आनन्द प्राप्त होगा, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता । आपका मन यही चाहेगा कि घण्टों इसी अवस्था में बैठे रहें और जब आप दूसरे सासारिक काम करेंगे



उस भी अन्तर से यही प्रेरणा होगी कि बसो अब प्रिय-वर्तन करो ।  
 उस आपसी भाँति मजल हो उठेगी और आपके मुल से अन्तस्तात्  
 निकल पड़ेगा—

बी अहल है फिर वही कुण्ठ कि रात बिल ।

बैठे रहें तस्वारे, जार्ग भिने हुए ३

इससे आगे की अपरवा का बणन कुछ असम्भव सा है, उसे  
 समाधि कहते हैं । मल-शिरोमणि योगिराज मगधान् इवानन् ने इस  
 अपरवा का बयान इन शब्दों में किया है—“जैसे अग्नि के बोध में  
 सोडा भी धारिरूप हो जाता है, इसी प्रकार परमेश्वर के ज्ञान में  
 प्रकाशमय होकर अपने शरीर को भी मूले हुए के समान जानकर,  
 अन्ता को परमेश्वर के प्रकाशस्वरूप आनन्द और ज्ञान से परिपूर्ण  
 करने को समाधि कहते हैं । ध्यान और समाधि में इतना ही भेद है  
 कि ध्यान में तो ध्यान करने का ही मन से जिस बोध का ध्यान करता  
 है, वे हीमों विद्यमान रहते हैं । परन्तु समाधि में केवल परमेश्वर ही के  
 आनन्द-स्वरूप ज्ञान में अन्ता मग्न हो जाता है, वहाँ हीनों का भेदभाव  
 नहीं रहता । जैसे मनुष्य ब्रह्म में बुद्धि मात्रा सोडा समय मीठर  
 कण्य रहता है, वैसे ही बीवात्मा परमेश्वर के बोध में मग्न होकर फिर  
 बाहर को आ जाता है ।”

इसी अपरवा को प्राप्त कर लेने वाले के लिए तो ईरोपेनिफ्द  
 में बह कहा गया है—( ईर ५ )

धिमन्तु रन्धि नृणाम्परीवाभुविवाकतः ।

तत्र को मोह का शोक इत्यन्तुपराकतः ॥

वहाँ (पर्वणकर) सब मूठ आत्मा ही हो गया वहाँ परम  
 को बेकते हुए विज्ञानी को क्या शोक है ? और वहाँ पर शोक और  
 मोह रह ही कैसे सकते हैं । वहाँ सर्वत्र आनन्द ही आनन्द का स्रोत  
 बह रहा हो वहाँ तो सारे संसार समाप्त हो जाने हैं, हर को आनन्द

ही आनन्द दिखाई देता है। द्वैत जाता रहता है, सब एक ही आनन्दघन रह जाता है। अथर्ववेद के दूसरे काण्ड के पहले ही सूक्त का मन्त्र है—अथर्व० ( २।१।१ )

वेनस्तत्पश्यत् परम गुहा यद्यत्र विश्व भवत्येकरूपम् ।

इदं पृथिरदुहृज्जायमाना स्वर्विदो अभ्यनूपत प्रा ॥

“विद्वान् उन् परमात्मा को परम-गुहा (हृदय की गुहा) में देखता है, जहाँ विश्व एकरूप हो जाता है। यह प्रकट पृथिवी भी व्यवहार के अयोग्य हो जाती है, तत्त्वज्ञानी वाकी जगत् को भी व्यवहार में आने के अयोग्य समझता है।” अर्थात् जिस नमय भक्त प्रभु-चिन्तन में हृदयस्थ होकर मग्न हो जाता है, तो उसके लिए समस्त जगत् एकरूप प्रतीत होता है, और यह सब कुछ व्यर्थ-सा प्रतीत होने लगता है। प्रभु-चिन्तन में वह इतना लवलीन हो जाता है कि इनकी ओर उसका ध्यान ही नहीं जाता। केवल आनन्दघन ही उसके सामने रह जाता है।

श्वेताश्वतर-उपनिषद् (२ २५) भी तो यही पुकार उठा है—

यदात्मतत्त्वेन तु ब्रह्मतत्त्व दीपोपमेनेह युक्तं प्रपश्येत् ।

अजं ध्रुवं सर्वं तत्त्वं विशुद्धं ज्ञात्वा देव मुच्यते सर्वपाशैः ॥

“जब वह युक्त होकर आत्म-तत्त्व के दीपक से उस ब्रह्म-तत्त्व को देख लेता है, जो अजन्मा अटल और नारंगे तत्त्वों से शुद्ध निखरा हुआ है, तब वह उस देव को जानकर सारी फाँसों से छूट जाता है।”

लेकिन यह स्मरण रगिण कि जितनी शीघ्रता से यह बातें कह दी गई हैं, उतनी शीघ्रता से होती नहीं। इनमें बहुत लम्बा समय लग जाता है। इसलिए पूर्ण श्रद्धा, विश्वास तथा प्रेम से इन पर आचरण करना होगा। आलस्य को त्याग कर निम्न पर आचरण कीजिए—

१ रात को यदि तीन बजे उठ सकें तो अच्छा है अन्यथा चार

बने अक्षरय लठ जाहए और एक पयटा ओईम् अबबा गायत्री का जाप कीजिए । स्वामी जी के जीवन-चरित्र में लिखा है कि फलकण्ठ में एक बार पं० हेमचन्द्र ब्राह्मवर्ती ने स्वामी जी से पूछा—“ईश्वर से मिलने का क्या उपाय है ?” स्वामी जी ने कहा—“बहुत दिन एक योग करने से ईश्वर की उपस्थिति होती है ।” तब उन्होंने पूछा—“वह योग कैसा है ?” अक्षर में स्वामी जी ने अष्टांग-योग की व्याख्या करके सुनाई और उपदेश दिया कि तीन घड़ी रात रहे लठकर गायत्री का अर्ध-सहित ध्यान किया करो । जो भी योग स्वामी जी के साथ रहते थे, उन्हें वह सदा प्रातःकाल करने का उपदेश देने थे ।

२. पाँच बने ज्ञानादि से निवृत्त होकर प्राणायाम कीजिए । पहले एक-एक नासिक्य से फिर दोनों नासिकाओं से, रेचक पूरक, कुम्भक कीजिए । इसके पश्चात् भक्तिका प्राणायाम करें और तब शान्त होकर सुकृती अबबा हृदय में ध्यान लगाए । इसकी विधि पहले लिखी जा चुकी है ।

३. ध्यान के समय ओईम् का जाप भी करते रहें ।

४. तब सम्भवा इवनादि करें ।

५. दोपहर को, या दिन में जब भी कोई समय मिले तो

गायत्री-मन्त्र और ओईम् का स्थावक जाप कर लिया करें ।

६. स्थावकाल को फिर प्रातःकाल की तरह ध्यान करें ।



## मन की क्रांति

भगवान् के मन्दिर में प्रत्येक इन्द्रिय और प्रत्येक नाड़ी काम आने वाली है। नाड़ियों<sup>१</sup> द्वारा ही उपासना करनी होती है। परन्तु इन सबमें सर्वोपरि मन है और सच पूछिए तो यह मन ही की कृपा है कि हम इस शरीर में बैठे हैं। प्रश्न-उपनिषद् में तीसरा प्रश्न यही है कि यह इस शरीर में कैसे आता है? इसका उत्तर उपनिषद् ने यह दिया है—

मनोकृतेनायात्स्मिन्शरीरे ।

अर्थात् मन के काम से यह शरीर में आता है “जो मन से शुभ-अशुभ सकल्प किए जाते हैं, उनके कारण से यह शरीर में आता है।”

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो ।

“मन ही मनुष्य के बन्धन का और मन ही मनुष्य के मोक्ष का कारण है।” वेद-भगवान् ने तो सबसे पहले यह आदेश किया है कि मन के बिना कोई भी काम नहीं किया जा सकता—

यन्मात्रं श्रुते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मन शिवमकल्पमस्तु ॥

(यजु. ३४—३)

१ उपासना नाड़ियों ही के द्वारा धारण करनी होती है। स्ति इटा और असित पिङ्गला—ये दोनों जहाँ मिलती हैं, उसको सुषुम्णा कहते हैं। उसमें योगाभ्यास से स्नान करके जीव शुद्ध हो जाता है। ऋग्वेदादि•

यही है वास्तव में कुसरी सब कामों की यदि हाथ में आ जाय तो सब कुछ मिल जाता है। निस्तम्बेह, परमात्मा एक मन की भी पहुँच नहीं परन्तु यह एक प्रमायित सत्य है कि प्रमुन्निवास के द्वार तक पहुँचा भी यही संकल्प है। इसकी राशि बहुत बड़ी है और भी शङ्कराचार्य जी ने जो इसकी महिमा और भी बढ़ा दी है। किसी ने प्रम पूजा—जित जन्तु है ? महाबान् ने उत्तर दिया—“मनश्चैव ।

‘संसार को किसने बँधे ? जिसने मन पर विजय पा ली ? और आंशान्क अपनिपद् प्रपाठक ७ खण्ड के आदि ही में यह कहा है—मनो हृत्पत्न्या मनो हि वाच्ये मनो हि ब्रह्म मन उपरत्येति “मन निस्तम्बेह वात्मा है, मन लोक है, मन ब्रह्म है, मन की आसना करो।’ अथवा मन ही लोक तथा ब्रह्म की प्राप्ति का साधन है। लोक परलोक दोनों मन ही से सिद्ध होते हैं, अर्थात् एक पौर्वर्णे मण्डल में एक बहुत सुन्दर मन्त्र है जिसमें यह आदेश किया है कि—

स्वित मनस्वमे वात इन्द्र केतुके सुने भूक्तविर ।

(श्र २-१०-४)

इसे पद्य की श्रद्धा करने वाले। यदि तू ममर्ष होकर मन को स्वित करे तो तू अकला ही बहनों को भी कुछ के लिए जीव सकता है—पद्याप्त है।

मन की इतनी बड़ी महिमा है चाहे इस लोक का अध्युदय प्राप्त करना हो चाहे ब्रह्मलोक में पहुँचना हो दोनों के लिए मन का स्वित करना अनिवार्य है।

इसके साथ यह मना सम्मुख रखिए कि मन और एक अथवा तीर्थ का भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। इन्द्रयोग-प्रदीपिका में एक बड़ा मार्मिक श्लोक आता है—

चित्तार्ता श्रुता शुक, श्रुतानां च लोकेन्द्र ।

अन्यान्तुल्यं एवमेव रक्षणीं प्रपन्नाः ॥

मनुष्यों का शुक्र (वीर्य) चित्त के आधीन है अर्थात् चित्त के चलायमान होने पर वीर्य भी चलायमान हो जाता है, इससे शुक्र मन के वर्शाभूत है। और मनुष्यों का जीवन शुक्र के आधीन है अर्थात् शुक्र को स्थिरता से जीवन और शुक्र की नष्टता से मरण होता है, इसलिए जीवन शुक्र के आधीन है, इसलिए यह आवश्यक है कि शुक्र और मन की भली प्रकार यत्न से रक्षा करे। इसका प्रयोजन यही है कि यदि जीवन की कामना है तो मन को स्थिर रखने का प्रयत्न करो।

ऐसा है यह मन जो इस प्रभु-मन्दिर में वाम करता है। जब तक इसको अपना साथी अथवा मित्र न बना लिया जाय, तबतक यह वाक वन कर हमें तग करता रहेगा और प्रभु-मन्दिर में पहुँच कर भी प्रभु-दर्शन से वञ्चित रखेगा। गङ्गा में खड़े होकर भी जलपान नहीं करने पाएंगे, प्यासे के प्यासे ही रह जाएंगे। इसलिए सबसे पहले मन की ओर ध्यान देना नितान्त आवश्यक है। एक उर्दू कवि ने भी कहा है—

बड़ी नासब<sup>१</sup> शै है यह दिल बेताव<sup>२</sup> सीने में ।

हजारों कीमती लालो<sup>३</sup> गोहर हैं इस दक्कीने<sup>४</sup> में ॥

और एक दूसरे कवि को तो “दिल” ही भगवान् का निवास-स्थान दिखाई दिया, वह कहता है—

खानाये<sup>५</sup> दिल में मिले वह जलवा गर ।

दर<sup>६</sup> बदर भटका किये जिम के लिये ॥

तो इसकी ओर से नेत्र बन्द नहीं किए जा सकते, अपितु पहले इसीकी शरण लेनी पड़ती है। यदि मन हाथ में आ गया तो फिर

१ न मिलने वाली । २ चञ्चल । ३ हीरे पत्ते रत्न । ४ खजाना । ५ मन के अन्दर । ६ प्रत्येक द्वार पर ।

प्रभु के दरबार में बेसठके पहुँचा जा सकता है। यह कार्य करने को तो सरल है, किन्तु करने को अत्यन्त कठिन है। गीता में अर्जुन भी तो यही पुकार छल्ला था—हे महाशय ! यह मन बड़ा बज्जल और प्रसन्न-स्वभाव वास्तव है तथा बहुत दृढ़ और बलवान् है। इसलिये जन्मको बरा में करमा मैं वासु धी भाँवि अवि पुष्कर मानता हूँ ।<sup>१०</sup> और कृष्ण भगवान् ने भी यह कहा कि निस्सन्देह मन बड़ा बज्जल और कठिनता से बरा में होने वाला है, किन्तु धैर्य देकर यह भी कहा कि अम्बास्त और बैराग्य से यह बरा में किया जा सकता है।

### प्रज्ञा साधन—ज्ञान

मन को बरा में करने का सबसे पहला साधन है 'ज्ञान'। यदि वह ज्ञान हो जाय कि यह संसार क्या है, संसार की बस्तुओं की वास्तविकता और मूल्य क्या है, तो फिर यह इनके पीछे भाग-भारा न कियेगा। जब यह पता निकल गया कि मनुष्य का सौन्दर्य केवल मल-मूत्र का परिणाम है तो फिर मन उस सौन्दर्य पर ललू क्यों होगा ? जब विज्ञान ने यह प्रमाणित कर दिया कि हीरा और कोयला एक जैसे तत्वों के बन हुए हैं, तो फिर हीरे की प्राप्ति के लिए मन कोई टैकी वाला न चलेगा। जब वह ज्ञान हो गया कि वह जो कुछ दिखाई देता है, वह सब मयर है, तो फिर इन दिखावों के लिए मन तुली नहीं होगा वह विषय-वासना भी सत्यपणी सब मोह, लोभ अहंकार आदि कर न वे सकेंगे। मन ही तो कहा है कवि ने—

एक-तरी तब तप करे निरक-बालना यद्वि ।

ज्ञान-राज की मन्त्र में बस तप काय नाहि ॥

इसकी हीन-रूप, बज्जल-रूप तबतक ही है जबतक इसे सामाजिक बस्तुओं का वास्तविक ज्ञान नहीं हो जाय। इन्द्रिय सब से पूब मन को ममकार्य और उसे कहिये कि देव भाई ! जिस

सुन्दरता पर तू रीमा है, वह तो पर्दे से ढकी गदगी है। उस पर्दे को हटा दे, उस गदगी को बाहर आने दे और फिर देख कि तू मुँह फेर लेता है या नहीं ? जिस घन के पीछे तू पडा है, और जिसके लिए तू नित्य नये भूठ तथा दम्भ करता है, वह भगवान् की नदियों और पर्वतों से निकली हुई धातुएँ ही तो हैं, वह मिट्टी और पत्थर ही तो हैं और फिर वह सदा किसी के पास ठहरते नहीं। आज तूने अत्यन्त यत्न से इकट्ठा किया, प्रभु की प्रजा को सत्ताकर, अनाथ बच्चों के अधिकार पर छापा मारकर, निरसहाय विधवाओं के बख उतारकर, निर्बल लोगों और जातियों पर आक्रमण करके, लाखों मनुष्यों के गले काटकर, निर्धन, दुःखी हरिजनों की मेहनत-मजूरी, कमाई को टेक्स लगाकर, और दूसरे नामों से लूटकर, भोले-भाले, सीवे-सादे प्रभु-प्रेमियों को कई चालों में घेरकर—यदि तूने इन ठीकरियों को इकट्ठा कर भी लिया तो क्या विश्वास है इस बात का कि कल तक यह तेरे पास रहेंगी ? तुझसे अधिक बलवान्, अधिक चालवाज, अधिक कपटी सब कुछ छीन लेगा या तू ही मृत्यु का प्रास बन जायगा ?

इसीप्रकार का ज्ञान जब मन को मिलेगा तो फिर यह नहीं हो सकता कि यह नश्वर सासारिक पदार्थों के पीछे भटकता फिरे और अपने धर्म से विमुख हो जाय, तब यह धर्माचरण पर आरुढ़ हो जायगा, नेक कमाई की ओर ध्यान देगा और अपने आपको विषय-वासनाओं से चुरावित रखेगा। इसके साथ यह भी जानना होगा कि परमात्मा क्या है ? यदि इतल शरीर में रहते हुए उसे न जाता तो भारी धानि होगी। केन-उपनिषद् में कहा है —

इह चेद्वेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टि ।

भूतेषु मूतेषु विचिन्त्य धीरा प्रेत्याम्माह्लोद्यदमृता भवन्ति ॥ (२-५)

“यहाँ ( इसी जन्म में ) यदि जान लिया तो ठीक है, यदि



यहाँ नहीं जाना तो बड़ा भारी नारा है। अक्षय्य धार पुरुष मय मूर्तों में बसको जानकर इस छोड़ से अलग हो अमृत होते हैं।”

इसीप्रकार बृहदारण्यक-उपनिषद् ने भी बड़ी चेतावनी दी है—  
इदं अतोऽयं निरुच्छ्रयं न वेदवेदीर्भ्रंशो विधिः ।

वे एतदुरग्राह्यो मन्त्रवेदेरु-दु-कर्मवर्जितः ॥ ( ४-१४ )

“यहाँ रहते हुए हम उसको जान सकते हैं और यदि मैं यहाँ जान-हीन रहा तो एक भारी विनाश है, जो हमको जानते हैं वे अमृत होते हैं, पर हमारे दुःख ही अनुभव करते हैं।

दूसरा साधन—बुरे सङ्कल्पों की निवृत्ति—

ज्ञान-प्राप्ति से मन के नेत्र सुख जाने के पश्चात् भी यह सम्भव है कि किसी अवसर पर “वमारा देखने के लिए ही यह किन्तु पड़े। इसलिये दूसरा साधन मन को बरा में करने का यह है कि “बुरे सङ्कल्पों से मन को बार-बार रोके। यह अभ्यास कुछ समय क्षण। अपने कई बार अनुभव किया होगा कि मन्थन की सबसे पीछे की काठकी में बैठे नेत्र बन्द करके जब मन्त्रों का मानसिक जाप करने लगते हैं तो बाकी देर बाद आप वृत्तते हैं कि वह हृदयत सब द्वारों को पार करके कहीं के कहीं निकल गए हैं और वहाँ अपनी मनमानी में लगे हैं। “अरे यह क्या ? तुम्हें तो मन्त्र-जाप पर लगावा था तू यह क्या करने लगा ? बस इसे इस प्रकार का न्त्र होने से रोकिए, यह आज्ञा के बिना किसी भी सङ्कल्प को हमारे अन्दर न छाने पाए इसके लिए मंत्र पर कड़ी निगरानी रखें। जब भी वह कोई भ्रम सङ्कल्प लहर आए तो तत्पश्चात् उन बुरे सङ्कल्प को मन से बाहर निकाल दो। वेद भगवान् में इसके सम्बन्ध में एक बहुत सुन्दर मन्त्र आता है—

“परोऽपेहि मन्त्रेषु चिन्तयामि संवसि । परोऽपि न ता अमये  
इह क्वापि संकर परोऽपि नोप मे क्व । ( अथर्व १-४२-१ )

“हे मन के पाप । दूर हो जा, भाग जा यहाँ से । यह क्या बुरी बात तू मुझे सिखलाने आया है ? जाओ, मुझे तुम्हारी कामना नहीं है, वनों के वृक्षों को जाकर चिपटो । मैं तो अपने मन के घर की सफाई में सलग्न हूँ ।” जब भी कोई बुरा सङ्कल्प आने लगे, उसी समय पूरे बल के साथ इस मन्त्र द्वारा उसे बाहर धकेल दीजिए ।

एक लड़का बड़ा नटखट था । मोहल्ले भरके लड़कों से लड़ता भगदता, स्त्री-पुरुषों, वच्चों-बूढ़ों सबको सताता । किसीका चरखा तोड़ दिया, किसीका टुपट्टा फाड़ डाला, किसीके चपत लगा दी, वह रोया, वह गिरा । इधर दौड़ा उधर दौड़ा, भागकर अपने घर आ जाता, लड़के की माता को नित्य ही उलाहने आने लगे । अड़ोसी-पड़ोसी उसकी माता के पास पहुँचे, बोले—“देखो मासी, यह तुम्हारा लड़का इस योग्य नहीं कि मुहल्ले में जाय । इसे अपने ही पास रखा करो ।” माता ने लड़के को आज्ञा दी कि बस, अब तुम मेरे ही निकट बैठे रहो । अब कहीं न जा सकोगे तुम । लड़का चुपचाप बैठ गया, जैसे बहुत ही आज्ञाकारी और नेक हो । माता ने ममता, अब सुधर गया यह, लेकिन जैसे ही अपने धन्धे में लगी और लड़के ने देखा कि माता की आँख उधर है, मूट खिसकने लगा । अभी दो ही कदम गया था कि माता ने देख लिया—“बैठ, कहाँ जाता है, बैठा रह, इसी स्थान पर, तू बाहर नहीं जा सकता ।” लड़का फिर बड़े सुधरे हुए बालकों की भाँति बैठ गया । माता फिर काम में लगी, लड़का तक में था कि अवसर मिले, और भाग निकलूँ । माता ने फिर देख लिया—“कहाँ जाता है, बैठा रह यहाँ ही, जब तक तू प्रतिज्ञा नहीं कर लेता कि तू बाहर जाकर किसी को नहीं मताएगा, तब तक तुझे इसी कैद में रहना पड़ेगा ।” लड़का फिर भी गिबिल्ली बनकर बैठ गया । माता अपना काम तो करती थी, परन्तु छिटि लड़के की ओर रखती थी । अन्त में लड़के की चञ्चलता दूर हुई और

उसने किसी को न सताने की प्रवृत्ति की तब माता ने उसे बाहर जाने की आज्ञा दे दी।

इसीप्रकार मन पर कहीं दृष्टि रमनी होती। अतएव वह पुरे संस्कारों को छोड़ देने की प्रवृत्ति नहीं करता, तबतक हमपर कहीं निगरानी रखने की आवश्यकता है। बार-बार अभ्यास करने से यह मन अपनी पक्षक्षया होनेसे भीर पुरे संस्कारों से दूर रहने पर बाधित हो जाता है।

**संस्कार के संस्कार की योजना—**

कोई भी मत्ता या बुरा संस्कार, उसके अनुसार चाहे कोई बचन पोला जाय या न, कोई कर्म किया जाय या न परन्तु मन पर अपना बोझा बहुत प्रभाव अवश्य छोड़ जाता है। इसी प्रभाव का नाम संस्कार है। इन संस्कारों ही से वृत्ति बनती है और मनुष्य को बुरे या अच्छे कामों में लगाती है। वृत्ति दो प्रकार की होती है—स्पृह और सुहम्। स्पृह वृत्ति में काम क्रोध आदि मन्मिहित हैं और सुहम्-वृत्ति में संस्कार। यह संस्कार ही मनुष्य के अधिक शत्रु हैं। यह जन्म जन्मान्तर तक स्थाय रहते हैं। कई बार ऐसा हुआ कि मनुष्य ने जो कर्म इस जन्म में मूलकर भी नहीं किए होते, न देखे और सुन होते हैं, वह कर्म यह मन करने लगाया है। जब इसे इस जन्म के संस्कारों से निवृत्त किया छे ऐसे मनुष्यों की रेखापंमन पर देखी गई, जिन्हें कभी स्वप्नों में भी नहीं देखा था। वास्तव में, वह वह सुहम् संस्कार हैं, जो किसी विद्यार्थी जन्म में किसी संस्कार के कारण मन पर रह गए थे। इसलिये कोई भी कोटा या बुरा संस्कार मन में आने ही नहीं देना चाहिए और यदि बलपूर्वक था ही जाय तो फिर क्या करें? प्रथम तो उसे उत्कण्ठ निवृत्त करने का प्रयत्न करना चाहिए और यदि संस्कार की ही रेखा मन पर रह ही जाय तो उसे जो कर मिटा डालें। इसकी

विधि यह है कि ओ३म् अथवा गायत्री-मन्त्र का जाप किया जाय। मन को शुद्ध करने में गायत्री-मन्त्र का जाप बहुत ही प्रबल सिद्ध हुआ है। परन्तु, मन्त्र के अर्थ भली-भाँति स्मरण कर लेने चाहिए। ओ३म् तथा गायत्री-मन्त्र का जाप न केवल नए बुरे सस्कारों को अपितु जन्म-जन्मान्तर के बुरे सस्कारों को भी दूर करने में समर्थ है। यह अनुभूत बात है, इसके लिए प्रमाणों की आवश्यकता नहीं है। सशय-बुद्धि रखने वाले कुछ लोग यह शका करते हैं कि गायत्री मन्त्र के जाप का मन की शुद्धि अथवा प्रभु-दर्शन से क्या सम्बन्ध है? इसमें तो मत्, चित्, आनन्द और जगदुत्पादक ईश्वर के दिव्य गुण का ध्यान करके और उसके शुद्ध स्वरूप को सामने रखके उससे अपनी बुद्धि को प्रकाशित करने और प्रेरणा करने ही की तो प्रार्थना की गई है। इससे बुद्धि चमक जाय तो चमक जाय, और कुछ नहीं हो सकता। परन्तु, वह इस बात को भूल जाते हैं कि आत्मा के लिए सबसे पहली आवश्यक वस्तु और प्रभु-प्राप्ति का सबसे पहला साधन तो ज्ञान ही है और ज्ञान बुद्धि के निर्मल होने ही से प्राप्त होगा। आत्मा के दो काम हैं—ज्ञान-प्राप्ति और प्रयत्न करना। योग-दर्शन में भी ब्रह्म-प्राप्ति का सबसे प्रथम-साधन प्रज्ञा अर्थात् बुद्धि ही को बताया गया है। योग-दर्शन १-२० में समाधि के साधन बताकर फिर यह दिखाया है कि समाधि से प्रज्ञा (बुद्धि) मिलती है। इस सूत्र में समाधि के साधन यह बताए गए हैं, प्रथम—पूर्ण श्रद्धा होनी चाहिए, फिर वीर्यवान् होना चाहिए, तब स्मृति का भण्डार खुलता है। इन तीनों बातों के हो जाने से भक्त की अशान्ति का नाश हो जाता है, चित्त शान्त और समाधिस्थ हो जाता है। तब प्रज्ञा-बुद्धि जाग उठती है और यही प्रज्ञा भगवान् के दर्शन कराने में पूरी सहायक बनती है। गायत्री-मन्त्र में बुद्धि के लिए इसीलिए प्रार्थना की गई है। योगियों ने योग-विद्या के अनुसार समाधि-अवस्था के पश्चात् जिस

ज्ञान को प्राप्त किया उसे गायत्री-मन्त्र का विधि-यूक्त और पर्याप्त संख्या तथा पर्याप्त काल तक जाप करने वाला पा गया। अतएव गायत्री मन्त्र का जाप और हमके साथ ओश्म् का जाप मकर के मन को बहुत शीघ्र प्रसु-दर्शन का अधिकारी बना देता है।

परन्तु बुरे संस्कारों की रेखाएं मिटाने के लिए यह देस देना अत्यन्त आवश्यक है कि वह रेखाएं पड़ती कैसे हैं? अपिषों ने मन तथा चित्त के इन मकर बरतलाए हैं, जिनसे बुरी रेखाएं पड़ जाती हैं। वह मकर यह हैं —

१ राग २ ईर्ष्या ३ पर-अपमान-विभीषा ४ असूया ५ द्वेष ६ अमय ।

राग—कहते हैं उस इच्छा को जो सुख मिलने पर पैदा होती है कि यह सुख मुझे सदा मिलता रहे।

ईर्ष्या—कहते हैं उस असन को, जो मन के अन्ध बूतों को प्रसन्ने फूसते बढ़ते तथा क्षति करते देखकर पैदा होती है।

परायकार-विभीषा—दुमरों को हानि पहुंचाने की भावना।

असूया—दुस्त्रों के गुणों को भी अवगुण बठसाना, सहाचारी को भी दुराचारी कहना।

द्वेष—दुस्त्रों से शत्रुता करना।

अमय—हिंसी के कठोर बचन सुनकर या हिंसी से अपमानित होकर और हम अपमान को न सहकर बढ़ता न देने की चेष्टा अमय कहलाती है इन इन मकरों से चित्त पर बहुत बुरी रेखाएं पड़ जाती हैं।

योग-दशत म्यापि-याद् में इन संस्कारों को दूर करने के लिए यह मुन्दर आदेश है —

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाया सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाया  
भावनातश्चित्तप्रसादनम् ॥

मैत्री, करुणा, मुदिता (हर्ष) और उदासीनता इन धर्मों से सुखी दुःखी, पुण्यात्मा और पापियों के विषय में उपेक्षा की भावना के अनुष्ठान से चित्त की निर्मलता और प्रसन्नता होती है।

सुखी लोगों को देखकर प्रसन्न होना और उनसे मैत्री करना— इससे राग जाता रहता है और ईर्ष्या भी मिटती है।

दुःखी लोगों पर दया करना करुणा कहलाती है और इससे परापकार-चिकीर्षा की भावना और इससे उत्पन्न होने वाले बुरे सस्कार दूर होते हैं। अतएव दुःखी लोगों के दुःख दूर करने की सदा चेष्टा करनी चाहिए। पुण्यात्मा-धर्मात्मा लोगों को देखकर सदा प्रसन्नता का प्रकाश करो, इससे “असूया” के बुरे सस्कार मिटेंगे। पाप-मार्ग में प्रवृत्त लोगों के सम्बन्ध में उदासीनता (उपेक्षा) की भावना से द्वेष तथा अमर्ष के मल दूर होते हैं, इसलिए चित्त को बुरे सस्कारों से साफ करने के लिए इस औपथ का नित्य सेवन करना चाहिए। यदि मन में किसी के विरुद्ध विचार आ रहा है तो उसके लिए शुभ-कामना करना शुरू कर दीजिए। यदि अहङ्कार का सस्कार तद्ग कर रहा है तो पूरी नम्रता से-शक्तिशाली भगवान् के चरणों में झुककर अपने इस अहङ्कार के इस सस्कार को मिटाए। यह अभ्यास निःसन्देह कठिन है, परन्तु कुसस्कारों से क्लृप्त मन को धोना है, तब यह तप तपना ही पड़ेगा। कितने ही भक्तों को देखा है कि यह बुरे सस्कार उनकी सारी तपस्या पर मिट्टी डाल देते हैं, रुदन करते-करते वह घण्टों गुञ्जार देते हैं, तब जाकर एक बुरे सस्कार को रेखा जरा सी दूर होती है। अर्थों को विचारकर गायत्री अथवा ओ३म् का जाप करने के साथ इसप्रकार से बुरे सस्कारों को धोने का यत्न अत्यन्त आवश्यक है।

## तीसरा साधन—सत्संग

मन के सुधार के लिए तीसरा साधन सत्सङ्ग है। भले पुठों की सङ्गति में बैठने से मन के सहस्रम्प-विकल्प इस प्रकार रुक जाते हैं, जिसप्रकार अग्नि के समीप बैठने से शीत जाता रहता है या जैसे रामबन (कारमीर) में बम्बू-भाग्य नदी के छट पर बैठते ही मारी गर्मी दूर हो जाती है। आपने कई बार देखा होगा कि जब पूर्ण भद्रा से आप किसी सच्चे महात्मा के पास गए हैं तो उनके निष्कट बैठने ही से आपका मन पक्काप हो गया है। उस समय कोई सहस्रम्प-विकल्प मन में नहीं उठता। इसीलिए तो कहा गया है—

उत्त रत्नं-मन्वर्ष-दुःख शरीरं तुला इव श्रियः ।

तुल्ये न ताही लब्ध विधिः सो दुःख बन् उत्तमः ॥

सत्सङ्ग में नित्य जाइए, इसमें आश्रय न करें। बच्चे-पूजे, छी-पुदप सबको सत्सङ्ग से छाम पहुँचता है। इससे प्राठ. समय की ज्या की भाँति सबको चुपचाप एक अद्भुत प्रसाद मिलता है। कभी कोबल को क्या आपन नहीं देखा ? जब वह भट्-बट् जलती हुई अंगीठी में डाला जाता है और बोकी देर जलत हुए कोबलों की सङ्गत में रहता है तो उसकी मा कार्मिक गूढ हो जाती है और वह भी छी-गर्मी तथा और छाकी के साथ चमकन लगता है। परन्तु यदि वह अंगीठी से नीचे गिर पड़े, जलते कोबलों की सङ्गति से दूर हो जाय तो वह बोकी देर के पश्चात् फिर असा पड़ जाता है। सङ्गति का मन पर बड़ा भारी प्रभाव होता है। नित्य सत्सङ्ग का संघन मन की क्षया पकट कर देता है। यदि कुछ दिनों, कुछ महीनों अथवा कुछ वर्षों के सत्सङ्ग से आपको कोई भी क्षम प्रतीत न हो तो पश्चात् ही नहीं। क्षम और प्रभाव निरन्तर होता रहता है। हमें इस बात की ओर ध्यान देना चाहिए कि हमारा मन कितना मीसा है, वह एक बार

घोने से ही स्वच्छ हो जायगा, अथवा वर्षों ही उसे सत्सङ्ग की नदी में धोना पड़ेगा ? यह बात मन की अवस्था पर निर्भर है और फिर कोई पता नहीं कि कौन-सी घड़ी में कौन-सा वचन हमारे मन पर ऐसा प्रभाव डाल दे कि जिससे युग-परिवर्तन हो जाय ।

ऋषि दयानन्द जिन दिनों जेहलम में थे, उन दिनों वहाँ महता अमीचद जी बहुत सुन्दर भजन गाया करते थे । परन्तु वे शराबी और उनका आचार भी कुछ किगड़ चुका था । नित्य ही स्वामी जी के पास आते । एक दिन महता अमीचद ने प्रभु-भक्ति का बहुत ही मनोहर गान गाया । स्वामी जी ने सुना तो कहा— “अमीचद हो तो हीरे, परन्तु कीचड़ में गिरे पड़े हो ।” बस तीर चल गया, निशाना ठीक बैठ था—उसी समय से महता अमीचद का जीवन पलट गया । मदिरा छोड़ दी, व्यभिचार को महापाप समझने लगे और महता अमीचद सचमुच ईश्वर के सच्चे भक्त बन गए । महर्षि के एक वाक्य ने एक शराबी और व्यभिचारी को भक्त और शुद्धाचारी बना दिया । इसीलिए मैं कहता हूँ कि सत्सङ्ग से उकताइए नहीं । निरन्तर प्रयत्नशील रहा करो । प्रतीक्षा कीजिए कि कब आपके भाग्योदय की घड़ी आती है ।

चौथा साधन—स्वाध्याय—

मन को पवित्र करने में स्वाध्याय भी बहुत महत्ता रखता है । शतपथ-ब्राह्मण में बतलाया गया है—

प्रिये स्वाध्यायप्रवचने भवतो युक्तमना भवत्सपराधीनोऽहर-  
हरर्यान् साधयते सुख स्वपिति परम-चिकित्सक आत्मनो  
भवतीन्द्रियसयमश्चैकरसता प्रज्ञाद्यदिर्यशोलोक्तमक्ति ।

( ११—१—७—१ )

“स्वाध्याय ( वेद का पढना ) और प्रवचन ( वेद-प्रचार ) से दोनों ऋषियों के प्यारे कर्म हैं, स्वाध्याय करने वाला पुरुष एकाग्र-मन



## तीसरा साधन—संस्तंग

मम के सुधार के लिए तीसरा साधन मस्तक है। मले पुरुषों की सङ्गति में बैठने से मन के सहस्रस्य-विकल्प इस प्रकार उठ जाते हैं, जिसप्रकार अग्नि के समीप बैठने से शीत जाता रहता है या जैसे रामवन (कारमौर) में बम्बू-भागा मत्स्य के छपर बैठते ही मारी गर्मी बूर हो जाती है। आपन कोई बार देखा होगा कि जब पूरा मया से आप किसी सच्चे महात्मा के पास गए हैं तो उनके निकट बैठने ही से आपका मन एकाग्र हो गया है। उस समय कोई सहस्रस्य-विकल्प मन में नहीं उठता। इसीलिए तो कहा गया है—

एतत् सर्व-सर्व-सुख परिण दुःख एव च ।

दुःखे च तापी सफल विधि की दुःख क्षय उत्तम ॥

संस्तङ्ग में निश्च जाइए, इसमें आश्रय न करें। बच्चे-बूढ़े, स्त्री-पुरुष सबको संस्तङ्ग से लाभ पहुँचता है। इससे प्रातः समय की क्या की मूर्ति सबको सुप्त-बाप एक अद्भुत प्रसाद मिलता है। कासे कोयले को क्या आपन नहीं देखा ? जब वह धक्-धक् जलती हुई बंगीठी में डाला जाता है और बोड़ी बैर उल्लते हुए कोयलों की सङ्गत में रहता है तो उसकी भाँ काखिल गूढ़ हो जाती है और वह भी जली गर्मी उठा और बाष्पी के साथ चमकने लगता है। परन्तु यदि वह बंगीठी से नीचे गिर पड़े उल्लते कोयलों की सङ्गति से दूर हो जाय तो वह बोड़ी बैर के पश्चात् फिर काखा पड़ जाता है। सङ्गति का मन पर बड़ा मारी प्रभाव होता है। निश्च संस्तङ्ग का सेवन मन की क्षया पकड़ कर देता है। यदि कुछ दिनों, कुछ महीनों अथवा कुछ वर्षों के संस्तङ्ग से आपको कोई भी लाभ प्रतीत न हो सके, पबराइए नहीं। क्षाम और प्रभाव निरन्तर होता रहता है। इसमें इस बात की ओर ध्यान देना चाहिए कि हमारा मन कितना मीन्य है, वह एक बार

धोने से ही स्वच्छ हो जायगा, अथवा वर्षों ही उसे सत्सङ्ग की नदी में धोना पड़ेगा ? यह बात मन की अवस्था पर निर्भर है और फिर कोई पता नहीं कि कौन-सी घड़ी में कौन-सा वचन हमारे मन पर ऐसी प्रभाव डाल दे कि जिससे युग-परिवर्तन हो जाय ।

ऋषि दयानन्द जिन दिनों जेहलम में थे, उन दिनों वहाँ महता अमीचद जी बहुत सुन्दर भजन गाया करते थे । परन्तु थे वे शराबी और उनका आचार भी कुछ किगड़ चुका था । नित्य ही स्वामी जी के पास आते । एक दिन महता अमीचद ने प्रभु-भक्ति का बहुत ही मनोहर गान गाया । स्वामी जी ने सुना तो कहा— “अमीचद हो तो हीरे, परन्तु कीचद में गिरे पडे हो ।” बस तीर चल गया, निशाना ठीक बैठा था—उसी समय से महता अमीचद का जीवन पलट गया । मदिरा छोड़ दी, व्यभिचार को महापाप समझने लगे और महता अमीचद सचमुच ईश्वर के सन्ने भक्त बन गए । महर्षि के एक वाक्य ने एक शराबी और व्यभिचारी को भक्त और शुद्धाचारी बना दिया । इसीलिए मैं कहता हूँ कि सत्सङ्ग से उकताइए नहीं । निरन्तर प्रयत्नशील रहा करो । प्रतीक्षा कीजिए कि कब आपके भाग्योदय की घड़ी आती है ।

चौथा साधन—स्वाध्याय—

मन को पवित्र करने में स्वाध्याय भी बहुत महत्ता रखता है । शतपथ-ब्राह्मण में बतलाया गया है—

प्रिये स्वाध्यायप्रवचने भवतो युक्तमना भवत्यपराधीनोऽहर-  
हरर्यान् साधयते सुख स्वपिति परम-चिकित्सक आत्मनो  
भवतीन्द्रियसयमश्चैकरसता प्रज्ञाद्यदिर्यशोलोक्त्यक्ति ।

( ०१—१—७—१ )

“स्वाध्याय ( वेद का पढ़ना ) और प्रवचन ( वेद-प्रचार ) ये दोनों ऋषियों के प्यारे कर्म हैं, स्वाध्याय करने वाला पुरुष एकाग्र-मन

ही खाता है, पराधीन नहीं होता। दिन-प्रति-दिन उसके प्रबोधन पूरे होते जाते हैं। मुख से सोता है। अपने आपका परम-बिन्दुस्तक बन जाता है, इन्द्रियों का संयम, मग्न एक रस रहना ज्ञान की बुद्धि, पराधीन लोगों को सुधारने और निपुण बनाने के काम (यह सब स्वध्याय से प्राप्त होते हैं)।

राठपय में एक और स्थान पर भी यह उपदेश है—

‘मनुष्य इस सारी दुनियाँ को जल से भर कर देता हुआ त्रिषु क्व  
। शेष । है, बसते सिद्धे प्रक को प्रकथ पसो से प्रकथ प्रकथ-प्रक को  
प्रक कोपय है का ठेक-ठेक प्रकथ हुआ प्रतिदिन स्वध्याय करता है, इसलिये  
स्वध्याय निषम से प्रकथ करिए ।’

तेजस्वीय-उपनिषद् (शिखावल्ली अनुवाक ६) में मनुष्य के पंद्रह विभिन्न कृत्तव्य गिनाए गए हैं। परन्तु प्रत्येक कर्त्तव्य के साथ स्वध्याय और प्रबोधन को मुख्य स्थान दिया गया है—‘नृक मीधस्य यह मानता है कि स्वध्याय और प्रबोधन ही आवश्यक हैं, क्योंकि ये ही तप हैं।

जब ऋषियों ने स्वध्याय की इतनी महिमा गाई हो तो फिर सन्देह ही क्या रह जाता है। जब हम स्वध्याय करते हैं तो निश्चय जानिये कि हम भगवान् और ऋषियों से सत्सङ्ग करते हैं और सीधे रूप में उनसे प्रसाद पाते हैं। स्वाध्यायशीलों का यह अनुभव है कि कितने ही संसार अपने आप उनके मिट गए, कितने ही रोगों की बहुतमूठ औषधियाँ उनके मिट गईं। प्रसु के कोप में जो बावगा, वह काशी हाथ नहीं झूट सकता उसको तो मन पराम्य करने के कितने ही साधन मिलेंगे। इसलिये निष्प्रति बेह उपनिषद् इत्यादि पठनीय श्रेष्ठ-मन्त्रों का स्वाध्याय अत्यन्त आवश्यक है। आप अनुभव करेंगे कि इससे आपका मन निर्मल होखे का रहा है।

## पाँचवाँ साधन—भगवदर्थ-कर्म—

मन की निर्मलता के लिए पाँचवाँ साधन “प्रभु के निमित्त काम करना” है। एक बार महात्मा हसराज जी ने मुझे बताया कि जब उन्होंने जीवन भर बिना वेतन लिए दयानन्द कालेज में काम करने के सम्बन्ध में आर्य-समाज लाहौर के प्रधान को पत्र लिखा तो उन के मन में एक अद्भुत ज्योति चमत्कृत हुई और वह इस ज्योति को कितनी ही देर तक देखते रहे। तब उन्होंने अनुभव किया कि उनके मन की शक्ति कितनी बढ़ गई है और वह अपने अन्दर कितना अवर्णनीय आनन्द अनुभव करते हैं।

निस्सन्देह, इससे मन की निर्मलता बढ़ती है, आन्तरिक मद्धोच नष्ट होता है, लुप्त जाती रहती है, विशालता का विस्तार होता है। जब कोई मनुष्य परोकार-निमित्त इस भावना से अपने आप को अर्पण करता है कि मैं जो कुछ कर रहा हूँ, भगवान् के निमित्त कर रहा हूँ, अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए नहीं, तो मन मोद, प्रसोद और आनन्द की तरङ्गों से तरंगित हो उठता है। जब किसी दीन दुखी और रोगी को, जिससे कोई भी सासारिक सम्बन्ध न हो, आराम पहुँचाया जाता है, भूखे को खाने को दिया जाता है, प्यासे की प्यास बुझाई जाती है तो उस समय यह कार्य करने वाला अपने आपको कुछ उपर उठा हुआ अनुभव करता है। यदि इसके साथ यह भावना भी हो कि मैं क्या हूँ, यह सब काम करने वाला भगवान् है, यह उसीकी कृपा है और यह काम उसीके समर्पण है, तो मन की निर्मलता बहुत अधिक बढ़ जाती है। इसी भावना को निष्काम-कर्म कहा जाता है। ऐसे कर्म उसे लिप्त नहीं करते, वह कमल-पत्र की भाँति ससार के जल में रहकर सारे कार्य करता हुआ भी कर्म-रूपी जल से अलिप्त रहता है। यदि कोई यह प्रतिज्ञा कर ले कि वह जो करेगा, भगवान् के अर्पण

करता रहेगा, तो फिर उससे कोई भी पुरा काम नहीं हो सकता। साधारण से साधारण व्यक्ति को या जब कोई वस्तु मँट करनी होती है, तो अच्छी से अच्छी वस्तु प्राप्त की जाती है। जब माछ पिछ, गुरु, इष्टदेव की मँट के लिए सर्वोत्तम पशुओं की खोज की जाती है, तब तो अपने भगवान् की मँट के लिए अति-उत्तम, अति-मिथ, और अति-उपयोगी वस्तु ही चाहिए। इसलिये जब वह कोई काम करने लगता तो पहले वह सोचेगा क्या वह भगवान् की मँट के योग्य है? यदि योग्य नहीं होगा तो उस उत्कृष्ट प्रसिद्ध देव—तब क्या वह मूठ बोल सकेगा? बोरी अच्छा कोई और किन्हीं कार्य कर सकेगा? क्यापि नहीं। तब वह छोटे कर्मों से स्वयमेव दूट जाएगा। भगवत्पूजित कर्म करने का परिणाम इत्या महात्मापूज्य होता है कि मनुष्य देवता बनने लगता है। इसी भाव को लेकर उल्लभ भगवान् ने बीर-भेषु अनुन से क्या था—

कर्मोपि करमाणि कर्तव्येति इति च्छ ।

कार्यस्वति शैलेन उत्कृष्टम् मर्षकम् ॥ (गी १-२)

“हे अनुन! तू जो कुछ कर्म करता है, जो कुछ पाता है, जो कुछ हवन करता है, जो कुछ दान देता है, जो कुछ स्वयंसाधारण रूप से करता है वह सब मेरे अर्पण है।”

हवन पद्य करने वाला भी तो पशु करने है। पशु अथवा सामग्री की प्रत्येक आहुति देकर “इहं मम” का भाव कहते हैं। इसका प्रबोधन भी पशु है कि वह मेरी नहीं, अपितु अमिथ्य एकेश्वररूप, प्राणरूप भगवान् की है। आहुतियों के स्वयं-स्वयं अर्पण का कार्य भी हो-या जाता है। इस प्रकार एक भक्त का जीवन और उस जीवन का एक-एक क्षण अनु-अर्पण होता रहता है। वह फिर अपने लिए नहीं जीता भगवान् के लिए जीता है, वह अपने

लिए नहीं खाता, प्रभु के लिए खाता है। जब उमका खाना, पीना सोना, व्यायाम करना, ध्वन करना, धनोपार्जन, मन्तान की पालना करना, सभा, समाज की सेवा करना, सब कुछ प्रभु अर्पण हो जाता है तो फिर चाहे उम्मे रूखी गोटी मिले या घी से चुपड़ी हुई, सुख मिले या दुःख, जीवन को ग्रस रहे अथवा मृत्यु ताण्डव करे, किसी भी अवस्था में भक्त का मन उदाम नहीं होता। प्रत्येक बात का वह स्वागत करता है। कितना ऊँचा उठ जाता है ऐसा भक्त ? देखने वाले आश्चर्य करते हैं और भक्त उनके आश्चर्य पर भी हँसता है। जब अपने आप को प्रभु के अर्पण कर दिया, तब वह जैसे चाहे हमारा प्रयोग करे, हमें कोई शिकायत रहती ही नहीं।

### छटा साधन—उपासना—

मन को निर्मल करने का एक और उपाय भी है। इसकी महिमा भी किसी से कम नहीं, वह है “उपासना”, अर्थात् पास बैठना। जिस परमात्मा को हम पाना चाहते हैं, जबतक उसके पास बैठने का अभ्यास नहीं डालेंगे, तबतक उसे पाएंगे कैसे ?

महाराज भगवान् दयानन्द ने ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका में लिखा है—“उपासना दो प्रकार की है, एक सगुण, दूसरी निर्गुण। जगत् का रचने वाला, वीर्यवान् शुद्ध, कवि, मनोपी, परिभू और स्वयम्भू इत्यादि गुणों के सहित होने से परमेश्वर सगुण है तथा अकाय, अब्रण, अस्नाविर इत्यादि गुणों के निषेध होने से वह निर्गुण कहाँता है।” जब हम यह कहते हैं कि परमात्मा सर्वज्ञ है, सर्वशक्तिमान् है, शुद्ध और सनातन है। सबको उसीने उत्पन्न किया है, यह पर्वत, यह नदियाँ, यह स्रोत, यह समुद्र, यह मीलों लम्बे रेगिस्तान, यह सुन्दर वन, यह पुष्प, यह मेघ, यह विद्युत् सब उसीकी महिमा है। यह सूर्य और चाँद, यह तारे

और मन्त्र जसी की आवा से घूमते हैं और यह सारा संसार उसीकी ओर प्रगुली छठप संकेत कर रहा है और भगवान् इन सबके भीतर-बाहर घोट-घोट हो रहा है। कोई भी स्वान उससे लासी नहीं, वो हम सगुण भगवान् की ज्वासना करते हैं। उसकी महिमा को देखकर उसके पराक्रम को देखकर उसकी असीम विराप्रबल्य को देखकर, उसके गुणों का वर्णन करते हुए हम उस की सगुण ज्वासना करते हैं। अब यह कहते और विचारते हैं कि वह स्वयं प्रबल, अमर, निराकार, और निर्बिम्बर है, वह कभी बन्धन में नहीं आया न वह गम्भना में आया है, न उलझ तोल है, न माप, अल्प है, वह अनादि है अनन्त है, बिना गन्ध के है, बिना स्पर्श के है, बिना रस के है, अब हम उसकी निगु ण ज्वासना करते हैं।

यह दोनों प्रकार की ज्वासनाएँ नित्य प्रति करनी चाहिए। दोनों प्रकार क मन्त्र वेद-भगवान् में हैं, इनका पाठ करना आवश्यक है। इनके पाठ के पश्चात् प्रभु के निकट बैठन की जारी आती है। पूर्वोक्त साधनानुसार आसन में स्थित हो प्रात्याशाम करके अब हम गुहा में प्रवेश कीजिए जहाँ प्रभु निश्चिन्त देता है। इसी विधि भगवान् ज्वासना ने यह सिद्धी है—

‘अथ के तीये दोनों स्तनों के बीच में और अर के अर का हरेण है, जिसको मन्त्रपुर अर्थात् परमेश्वर का नगर कहते हैं, उसके बीच में जो गर्भ है, उसमें कमल क आकार का वेसम अमल अकालरूप एक स्तन है, और उसके बीच जो सर्वशक्तिमान् परमात्मा बाहर-भीतर एकरस होकर भर रहा है, वह आनन्द-स्वरूप परमेश्वर उसी प्रकाशित ज्ञान के बीच में जोड़ करने से मिल जाया है इसका उसके मिलने का कोई उत्तम स्तन व मार्ग नहीं है।’

योगिराज ने ज्योतिष के अनुसार कितना सरल सीधा और

ठीक ठिकाना प्रभु का वतला दिया है। इसे पाकर भी यदि हम प्रभु के निकट न जायें तो हमारा दुर्भाग्य। और जब एक बार हृदय की गुहा में निहित ज्योति से भरपूर उस स्थान में प्रभु को देख लिया तो फिर ग़ोप क्या रह जाता है ?

हृदय कहाँ ?—

कुछ लोगों का मत है कि हृदय की गुहा सिर में है। मस्तिष्क से ऊपर और खोपड़ी से नीचे एक स्थान है, जिसे क्षीर-सागर भी कहते हैं, वही ब्रह्म-रथ भी है। इसलिए उस ब्रह्मचक्र में ध्यान लगाने की बात वह कहते हैं, परन्तु उपनिषद् हृदय की गुहा कण्ठ के नीचे वतलाते हैं। मुझे इन दोनों में कोई आपत्ति दिखाई नहीं देती। वात स्पष्ट है—प्रभु को पाने के दो ही साधन हैं—एक विज्ञान और दूसरे मन की एकाग्रता। विज्ञान का स्थान है मस्तिष्क और मन का स्थान दोनों स्तनों के बीच हृदयाकाश। इन दोनों का मिलाप होना आवश्यक है। जब तक विज्ञान प्राप्त न हो जाय, तब तक प्रभु दर्शन नहीं हो सकते। इसीलिए सबसे पूर्व भक्त को आत्म-ज्ञान कर लेने के लिए आज्ञा-चक्र (ध्रु-मध्य) में जाना होता है। उपासना करने और मन को एकाग्र करने के लिए हठयोग-प्रदीपिका का एक श्लोक विशेष ध्यान देने योग्य है —

ध्रुवोर्मध्ये शिवस्थान मनस्वत्र विलीयते ।

ज्ञात्वा तत्पदं तुर्यं तत्र कालो न विद्यते ॥ (४-४८) :

दोनों भ्रुकुटियों के मध्य में शिव का—या सुखरूप आत्मा का स्थान है, यही मन लीन होता है अर्थात् उसे जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति से चौथा पद “तुर्यपद” प्राप्त हो जाता है, और उस पद में काल (मृत्यु) नहीं है, अथवा सूर्य चन्द्र “इडा पिंगला” के निरोध से काल की गिनती हो ही नहीं सकती।

ध्रु-मध्य में मन को स्थिर करना आवश्यक है, क्योंकि मुख्य



केन्द्र इसी स्थान पर है। वहाँ अब मल प्रयत्न करता है और अपने को विद्यानी सिद्ध करता है, अधिष्ठात्री सिद्ध करता है, उस हृत्तेजस्य की गुहा में जाने का पास-पोर्ट मिल जाता है। वहाँ से पास-पोर्ट लेकर फिर वह हृत्तस्य की गुहा में प्रुसक्त है। यही इरान होते हैं। अथर्ववेद के केन सूक्त ( १०-२-२६ ) में इसी विषय का एक बहुत ही सुन्दर मन्त्र है—

मूर्धनमस्य संकीर्णवर्णा इव च यः ।

मक्षिष्वावर्षः शैरक्यः परमात्माऽधिष्ठात्री च ॥

“वह एक-रस रहन शब्दा पवित्र ईश्वर इस मनुष्य के मूर्धा और हृत्तस्य की सी कर ( अगल में भेजे ), वह मक्षिष्क से ऊपर होकर शिर के नीचे हृत्तस्य में आ जाता है ।”

अर्थात् परमात्मा को पाने वाले मल के लिए आवश्यक है कि वह मक्षिष्क और हृत्तस्य को एक बना ले। वह न हो कि बुद्धि तो किसी दूसरी ओर जाने का आदेश करे और मन कहीं और चले जाये। दोनों को ही एक बना देना होगा। इनको सिये बिना काम नहीं चलेगा। इस सम्बन्ध में एक बहुत ही रोचक भाव श्री महात्मा माराबय्य स्वामी जी ने बतलाया है कि परमात्मा उन्हें से परे है अर्थात् मक्षिष्क से ऊपर है और हृत्तस्य ही में जो प्रेम शब्दा, और मक्षिष्क का स्थान है, उसके द्वारा होते हैं। यदि यह समझ लिया जाय कि बीजम-पाल में प्रमु-विरान हृत्तस्यकाय में होते हैं और मृत्यु के समय आत्मा को ब्रह्म-ब्रह्म में—तो न्यारी ज्ञानम सुक्य जाती है। इसी अवस्था में ब्रह्म-ब्रह्म में से होकर शरीर जोड़ने का विधान है। उपनिषद् में लिखा है कि मल्ले और धोगियो वा आत्मा मृत्यु के समय इन्द्रबोनि में ( भास का एक कोमदा सा पक्ष में जो लटक रहा है ) आ जाता है और फिर वहाँ से सीधा ऊपर ब्रह्म-ब्रह्म में से होकर शरीर के बन्धन से मुक्त हो जाता है। ऐसे मल मोक्ष के

अधिकारी होते हैं। यह बात सम्मुख रखने से मस्तिष्क और हृदय का कोई मगड़ा वाकी नहीं रहता। भक्त के लिए आवश्यक है कि वह ब्रह्मचक्र तक अपनी गति कर ले। वहाँ तक पहुँच हो जाने के पश्चात् हृदय को गुहा में उतरने की आज्ञा मिल जाती है। यहीं दर्शन होते हैं और फिर मृत्यु-समय में इसी ब्रह्म-चक्र द्वारा भक्त की आत्मा शरीर त्याग देती है।

उपासना का अधिकारी बनने के लिए जहाँ प्रभु के गुण-गान करने की आवश्यकता है, वहाँ एकान्त में बैठकर भ्र-मध्य में मन को बार-बार ले जाने की भी आवश्यकता है, ऐसा अभ्यास करने से मन प्रभु के निकट बैठने का अधिकार प्राप्त कर लेता है।

---



## मन की निर्वलता

मन को बश में करने के साधनों का वर्णन करने के साथ मन के विषय में यह बात समझ लेना भी आवश्यक है कि मन के गुण क्या हैं ? यदि यह मालूम हो जाय कि इसकी दौड़ कहाँ तक है तो फिर इसे काबू करना सहल हो जाता है। मनुष्य शरीर की एक-एक नस-नाड़ी की रोज कर डालने वाले ऋषियों ने शरीर के उन सारे तत्त्वों और द्रव्यों को भी ढूँढ निकाला है, जिनसे यह शरीर बना है। इसीप्रकार ससार के बनने में जो वस्तु और पदार्थ काम में लाए गये हैं, उनके विषय में भी ऋषियों ने पूरा पत्र दिया है। दर्शन-ग्रन्थों में इनका बहुत सुन्दर वर्णन आता है। वैशेषिक-दर्शन में बतलाया है कि निम्नोक्त नव-द्रव्य हैं—पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन। शरीर-निर्माण में भी इन्हीं द्रव्यों का प्रयोग हुआ है। ऋषियों ने इन द्रव्यों के स्वरूप, लक्षण और गुण का लिङ्ग भी मालूम कर लिया और बतलाया कि पृथिवी का लिङ्ग गन्ध, जल का रस, तेज का रूप, वायु का स्पर्श, आकाश का शब्द, और आत्मा का इच्छा-रूप, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञान की व्याख्या के पश्चात् 'मन' की बात भी कही।

दर्शनों के विषय में यह सारी प्रस्तावना मैंने केवल मनकी बात कहने के लिए यहाँ उद्धृत की है, अन्यथा तर्क-वितर्क की इन बातों

में लगाने का मेरा कोई प्रयोजन नहीं। परन्तु न्याय-दर्शन के कर्त्तों ने 'मन' के विषय में एक ऐसी महत्त्वपूर्ण बात बड़ी है जो मन को कर्त्तु में करने का प्रयत्न करने वालों के यह काम की नींव है। किसी भी शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक होता है कि हमें कोई कमजोर स्थान मालूम किया जाय और मन पर विजय प्राप्त करने वाले यह सुन कर प्रसन्न होंगे कि न्याय-दर्शन में मन की निरक्षता यही प्रकार दर्शा दी है—

दुष्पश्यन्मन्त्राणां विद्वान्मन्त्रो मित्तम् ॥ न्याय ११-११

“जिससे एक काल में दो पक्षों का प्रत्यक्ष और ज्ञान नहीं होता हमको मन कहते हैं।” जब यह पक्ष सम गया कि मन दो एक समय में केवल एक ही काम कर सकता है, एक काल में एक ही विषय का यह प्रत्यक्ष करने का सामर्थ्य रखता है, एक क्षण में एक ही वस्तु का इसे ज्ञान हो सकता है, दो का नहीं, तो फिर इसे एक भगवान् की स्योति की ओर लगाने में कौन-सी कठिनाई रह जायगी? केवल एक बार पक्षपूर्वक प्रयत्न करने और इठ करने की आवश्यकता है। जब एक बार इसे 'प्रो-स्टन' में लगाने दिया। वस, यह भी में लगा रहेगा। यह किसी दूसरे पक्षों की ओर जा ही व सवेक, इसमें इतनी शक्ति नहीं कि एक समय में दो का ध्यान कर सके। मन की इस निरक्षता से मनुज लोग आवश्यक काम छठारं और इसे भगवान् की ओर लगाने का प्रयत्न करें आवश्यक संकल्पना सिद्धेयि।

## उत्सके अपात्र

ईश्वर नाम अमूल्य है, दामन बिना चिकाय ।

तुलसी अचरज देखिये, कोई गाहक ना आय ॥

निस्सन्देह, यह बहुत आश्चर्य है कि प्रभु-भक्ति पर कुछ भी तो व्यय नहीं होता और भगवान् का नाम बिना मूल्य के मिलता है, परन्तु फिर भी कोई खरीदार नहीं आता । इस आश्चर्य को देखकर तुलसीदास जो स्वयं ही इसका उत्तर देते हैं—

तुलसी पिछले पाप से, हरिचरना न सोहाय ।

जैसे ज्वर के वेग में, भूख षिदा हो जाय ॥

जब मनुष्य ज्वर-ग्रस्त हो तो उसे अमृत से अमृत वस्तु भी अच्छी नहीं लगती । न दूध पीने को जी चाहता है, न कुछ और खाने को । हाँ किसी-किसी समय चटपटी चीजों के लिए जी ललचाता है, परन्तु भूख फिर भी नहीं होती । इसी प्रकार जिन लोगों को पिछले जन्मों के पाप का ज्वर चढ़ा हुआ है, उन्हें प्रभु-चर्चा भली नहीं लगती । वह परमात्मा के नाम से भागते हैं । कुछ लोग तो परमात्मा का अस्तित्व ही नहीं मानते । ऐसे लोग वास्तविक रूप में रोगी हैं ।  
उनका मन तथा आत्मा पाप-ग्रस्त है । इसीलिए उनका मन प्रभु-भजन में तो नहीं लगता । हाँ, नाच, तमाशे, सिनेमा और इसी प्रकार की दूसरी चटपटी वस्तुओं पर ललचाता है और वह इन्हीं की और दौड़ते हैं । परन्तु वह नादान नहीं जानते कि ज्वर-ग्रस्त होते हुए

बह रोग को और भी बढ़ा रहे हैं। ऐसे रोग प्रभु को कभी पा भी सकेगे ? मारी सम्बेह होता है।

यजुर्वेद के १७-वें अध्याय का ३१-वाँ मन्त्र इस विषय को बड़ा स्पष्ट करता है, कौन रोग प्रभु को नहीं पा सकते ? निम्नोक्त मन्त्र में इसका बहुत ही सुन्दर उत्तर दिया गया है—

न तं विद्या न इमा ज्ञानाधमन्त्रेष्वधमन्त्रं समूह ।

नीदारेण प्राण्य कल्प्या वाङ्मय कल्पयत्यस्यवर्ति ॥

“हे मनुष्यो ! जैसे ब्रह्म के न जानने वाले पुरुष भूम के आश्रय कुहर के समान अज्ञान-रूप अध्यात्म से अन्धी प्रकार बड़े हुए बड़े स्थूल अमत्य वादानुवाद में स्थिर रहने वाले, प्राण-पोषक और योग्यात्म्य को छोड़ शब्द-आर्ष-सम्बन्ध के सण्डन-मस्डन में रमण करते हुए, बिचरते हैं जैसे हुए तुम लोग उस परमात्मा को नहीं जानते हो। इन मन्त्रों को जो रक्षक करता और जो ब्रह्म तुम अन्धी अज्ञानियों के सकार से अर्थात् अर्पण-करण-रूप में अगत और जीवों से मित्र तथा समी में स्थिर भी दूरत्व होत्व है, उस शक्ति सूत्रम आत्मा के आत्मा अर्थात् परमात्मा को नहीं जानते हो।”

अगवात् को पा न सकने वाले चार प्रकार के मनुष्यों का बख्त इस वेदमन्त्र में किया गया है—

अज्ञानी—

परसे तो वह, जो ‘नीदारेण प्राण्य’ अज्ञान-रूपी अध्यात्म में कोदरे के समान बड़े हुए हैं। निपट अज्ञानी लोग, जिन्हें किसी वस्तु का यथार्थ ज्ञान नहीं जो पशुवत् जीवन व्यतीत करते हैं, जिन्होंने ज्ञान की अग्नि में अपनी बुद्धि को नहीं ज्वाला और न ही अपने जीवन का उद्देश्य जाना। जन्म से शिवा पर गये, बड़े हुए, प्राण-धिया और मर गये—बस इतना ही जिनका जीवन है, और जो ज्ञान से शून्य हैं। ऐसे व्यक्तियों को प्रभु-वर्तन नहीं हो सकते।

जल्पी—

दूपरे वह लोग भी प्रभु-दर्शन से वञ्चित रह जायेंगे, जो (जल्प्या) जल्प करने वाले हैं अर्थात् थोड़े सत्य, असत्य, वादानुवाद में स्थिर रहने वाले, कुछ अल्प-ज्ञान प्राप्त कर लिया और शब्द-जाल में पड़कर लगे वाद-विवाद करने—ऐसे, जैसे चूहे को इल्दी की एक गाँठ मिल जाए तो वह अपने आपको पसारी समझने लगे। ऐसे लोग भी जिनको पूरा ज्ञान नहीं या जो वाद-विवाद ही में पड़े रहते हैं, जिनका स्वभाव केवल दूसरों की भाषा और वाणी के दोष निकालना हो जाता है, तत्त्व तक नहीं पहुँच सकते। केवल गृद्ध की तरह लाशों पर मँडराया करते हैं। इनकी वृत्ति इम-वृत्ति नहीं अपितु काक-वृत्ति होती है। इनके भाग्य में ज्योति से भरपूर स्वर्ग में पहुँच कर प्रभु-प्यारे को पाना नहीं लिखा। ऐसे लोग गाय के स्तन के साथ जोक की तरह चिपट कर अमृत-दूध से वञ्चित रहते हैं और रक्त ही पीते हैं।

असुवृषः—

तीमरे वह लोग हैं, जिनको इस वेद मंत्र में 'असुवृष' कहा गया है। इन्हें प्राण-पोषक या 'पेट्ट' भी कहा जा सकता है। अर्थात् जो विरोचन-बुद्धि वाले हैं और जो यह समझे बैठे हैं कि यह शरीर ही सब कुछ है। चाहे त्रेजवानों के गले काटने पड़ें, परन्तु इस शरीर की ज्वान का चस्का अवश्य पूरा होना चाहिए।

( १ ) विरोचन-बुद्धि वह लोग हैं, जो शरीर ही को आत्मा समझ कर इसीकी पूजा में लगे रहते हैं। इस सम्बन्ध में एक बड़ी रोचक कथा छान्दोग्य-उपनिषद् में आती है—

प्रजापति ने कहा—“आत्मा जो कि पाप से अलग है, जरा और मृत्यु से परे है, शोक से दूर है, भूख और प्यास से अलग है, सच्ची कामनाओं वाला और सच्चे सङ्कल्पों वाला है, उसका अन्वेषण करना चाहिए, उसीकी



चाहे कोठी-मजदारी करनी पड़े, परन्तु इस शरीर के पेट की कबर मरनी ही चाहिए। दूसरे मरें या जियें, परन्तु मेरी बेइ को सब प्रकार का सुख मिलना चाहिए। धर्म, चाति, बेरा पड़ें माइ में, मेरे शरीर के आराम के बिये मोटर, बङ्गल बाटिका और नाना

लगाव करनी चाहिए। वह जो इस कल्पना को हँड कर जान लेता है वह खरे खोचों को और खरी कामनाओं को पा लेता है। प्रजापति के इन शब्दों को देखते और सोचने वालों में कुछ और उम्होंने कहा— 'हमें उस प्रजापति का जन्मपत्र करना चाहिए, जिस जन्म को हँड कर पुनः खरी खोचों और खरी कामनाओं को पा लेता है।' वह विचार कर देखजनों में से इन और शब्दों में से किञ्चित्क प्रजापति के कथ वच । प्रजापति ने दोनों के जन्म का आरंभ पूजा। दोनों में कहा 'आपके इस कल्प का किंवदन्ता दुबिधी में लिख रहा है कि जानना की कोज करनी चाहिए। तो इन दोनों जन्मों को जन्म में जानने परस आए हैं। प्रजापति ने उन दोनों को कहा— "वह जो खोच में पुनः शीकत है वही है वह कल्पना करी है जो मैंने कहा था वह कल्प है, वह कल्प है, वह कल्प है।"

दोनों में पूजा— 'हे मयकर! वह जो कल्पों में शीकत है, खेर वह जो खोचों में शीकत है वह खीर है।'

प्रजापति ने उत्तर दिया— "वही इन्हीं शीकत है। जानी के जन्म में तुम दोनों कल्पना (करने का) को देखो और जो इस तुम कल्प (करने का) को नहीं समझे हो वह तुम्हें कलाये।" उम्होंने जानी के जन्म में देखा। तब प्रजापति ने उम्हें कहा— 'क्या देखा तुमने। उम्होंने कहा "जन्म। हम वह उम्हें कल्पना देख रहे हैं, रोम-रोम एक और कल्पना का—सारी पूरी जन्म।"

प्रजापति ने उम्हें कहा— "अच्छे-अच्छे मू. मय  
तुम करने आनने का तुमका करके (कल्प) शक  
जानो में देखो।" इन शब्दों में देखो ही पेश  
के पूजा

प्रकार के भोजन होने ही चाहिए। ऐसे पेटू लोगों का धर्म—ईमान केवल पेट रह जाता है। खाओ, पिओ और ग्याते ही खाते मर जाओ। एक बार रोम के लोग इसी प्रकार का जीवन व्यतीत करने लगे थे। वह खाते थे और जब पेट भर जाता था तो वमन कर देते।

क्या देवने हो ?” वे बोले—“जैसे हम अच्छे भूषण और वस्त्र धारण किए हुए और साफ सुधरे हैं, इसी प्रकार हे भगवन् । यह दोनों हमारे आत्मा (अर्थात् प्रति-विम्ब) है।” प्रजापति ने कहा—“यह आत्मा है, यह अमृत है, यह अमय है, यह द्रव्य है।” तब वह दोनों प्रसन्न-चित्त होकर चले गए।

उन दोनों को जाते देखकर प्रजापति ने कहा—“यह दोनों आत्मा को जाने और खोजे बिना जाते हैं। इन दोनों में से जो कोई देवता या असुर इस उगनिषद् ( देह आत्मा है, इस सिद्धान्त ) का अनुसरण करेंग, वह नष्ट हो जाएगा।”

अब विरोचन तो वैसा ही प्रसन्न-चित्त हुआ असुरों के पास पहुँचा और उमन कहा—“यह शरीर ही आत्मा है और यहाँ सेवा के योग्य है। जो यहाँ आत्मा ( देह ) को पूजता और उसकी सेवा करता है, वह दोनों लोकों का लाभ करता है।” लोकेन्द्र इन्द्र ने देवताओं के पास पहुँचने से पहले ही मय ( दिव्य ) अनुभव किया। जब यह ( छाया जो पानी में देखी ) अर्थात् शरीर अच्छे भूषणों को धारता है, तो अच्छे भूषणों वाला हो जाता है। और जब अच्छे वस्त्रों को पहनता है तो अच्छे उग्रों वाला हो जाता है। इसी प्रकार शरीर के अग्न्या होने पर यह भी अग्न्या हो जाता है, काना होने से काना होता है, लज्जा होने पर यह भी लज्जा हो जाता है, मुझे तो इस सिद्धान्त में कोई भलाई नहीं दीखती। यह विचार कर इन्द्र फिर प्रजापति के पास आया। प्रजापति ने उसे देखकर कहा—“इन्द्र ! तुम शान्त हृदय होकर विरोचन के साथ चले गए थे, किस प्रयोजन से तुम फिर आ गए हो ?” इन्द्र ने अश्रुत वही शब्दा उनके सामने रख दी और कहा—“इस शरीर के बाधा हाने पर तो इसकी

किन्तु प्राते धीर भगम कर देते। यह इन्हींमें शरीर का सुख समझे बैठे थे। ऐसे लोगों ने जीवन का ध्येय केवल खाना ही समझ रखा है वह जीते ही खाने के सिण हैं। परन्ती के एक कवि ने खूब कहा है—

सुरक्ष करण खिलये किन्तु करण करण ॥

छो खेनकिन्तु कि खिलन करण वही सुरक्ष करण ॥

अर्थात् “खाना जीवित रहने धीर भगवाम् का मञ्जन करने के लिए ही परन्तु तेरा यह बिधान है कि जीवन खाने ही के लिए बनाया गया है।” ऐसे ही लोग असुरक्ष हैं। यह क्वापि प्रमु-मञ्जन में मन को मही लग्न मकते। यह छो केवल शरीर की मिन्न-मिन्न इन्ट्रिबों की सन्तुष्टि में लग रहते हैं, किसी के सिण अच्छे हरय का, किसी के खिये सिनेमा का प्रबन्ध कर, किसी ने स्वादु मोञ्जन मॉगे किन्ती ने धीर ही इच्छा प्रकट कर ही, असुरक्ष लोग इन्हीं के नीकर बनकर

काज भी नर हो जाती है, इसलिए इस सिद्यान्त में मुझे पछाई नहीं खिलती। प्रजापति ने कहा— ‘तुम्हें ठीक समझ क्योंकि जना खाल्य नहीं है। जब मैं तुम्हें खाल्यी खाल्या का खाल्यजन कर वा।’ इसके पञ्चत प्रजापति ने खाल्य में मद्रिय खाल्यन करके खाल्ये को खाल्या खाल्या। इन्त में इन्तरी भी खाल्यी की। एन प्रजापति ने खाल्यी खाल्या खाल्ये को खाल्य खाल्या। इन्त में इन्तरी भी मीन मीन खिल्यी ती प्रजापति ने खाल्य कि यह ते खाल्यन खाल्यी खाल्या को खाल्ये किना नहीं खाल्य। इसलिए इन्त को खाल्येन किन्तु— ‘यह शरीर मरने खाल्या है, जो खाल्य ते खाल्या हुआ है, यह इन्त खाल्य धीर खाल्यी खाल्य का खाल्यन (खाल्ये की खाल्य) है। खाल्य यह शरीर के खाल्य एक ही खाल्य है, शरीर में खाल्यमिनाल खाल्या है। यह खाल्य धीर खाल्य (खाल्य-खाल्य) ते खाल्या हुआ है, पर खाल्य यह खाल्यीर खाल्य है, शरीर ते खाल्ये खाल्ये खाल्य खाल्यन है, एन इन्तरी खाल्य धीर खाल्य नहीं खाल्य।’ खाल्ये खाल्ये के लिए खाल्येन-खाल्यन के खाल्ये खाल्यन का खाल्ये खाल्ये खाल्य खाल्ये, खाल्येन खाल्येन खाल्य खाल्ये।

माग जीवन वैल, कुत्ते और उल्लू की भाँति व्यतीत कर देते हैं। इसका यह प्रयोजन नहीं कि शरीर की ओर ध्यान ही नहीं देना चाहिए। नहीं, ध्यान अवश्य देना चाहिए। आत्मा के निवास-स्थान की ओर ध्यान न देंगे तो किसकी ओर देंगे ? परन्तु इसे निवास-स्थान ही समझना चाहिए, आत्मा नहीं। गीता में कृष्ण भगवान ने बहुत सुन्दरता से बतलाया है—

युक्ताहारविहारस्य, युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।

युक्तस्वप्नावबोधस्य, योगो भवति दुःखहा ॥ (गीता ६।१५)

“युक्त आहार और युक्त ही विहार, इसी प्रकार युक्त ही चेष्टा और कर्म करने वाले और युक्त ही सोने और जागने वाले योग को सिद्ध कर सकते हैं।”

युक्त का प्रयोजन है उचित, मुनामित्र। जो लोग मर्यादा में रह कर खाते हैं, न इतना कम कि शरीर निर्बल ही होता चला जाय और न इतना अधिक कि ग्याने के सिवाय और कुछ सूझे ही नहीं। शरीर-रक्षा के लिए जितना खाना आवश्यक है, उतना ही खाना चाहिए, न कम, न अधिक। इसी प्रकार काम भी मर्यादा से करना चाहिए, न कम, न अधिक। सोने और जागने के विषय में भी “युक्त” के सिद्धान्त को सामने रखना चाहिए और चेष्टा भी अपनी शक्ति और अपनी अवस्था के अनुसार ही करनी चाहिए, तभी वह चेष्टाएँ पूर्ण हो सकती हैं। इस प्रकार से जो लोग अपना जीवन बना लेते हैं, निश्चय ही वह योग ही करते हैं, और ऐसे ही लोग प्रभु के माथ योग करने के अधिकारी बनते हैं। जो अपना उद्देश्य केवल पेट-पूजा ही मानते हैं, उनके लिए तुलसीदास जी कहते हैं—

भजन करन को आलसी, भोजन को तय्यार ।

तुलसी ऐसे जनन पर, बार-बार धिक्कार ॥

तो ऐसे लोग भी प्रभु के प्रेम-पात्र नहीं बन सकते ।

वेद-आशा के अनुसार मगवान् का न पा सञ्चने वाले वेद की भाषा में “उत्पत्तिशास” कहा जाता है। योगिराज मगवान् दयानन्द ने इनका यह भाव लिखा है कि—“योगशास्त्र को छोड़ कर शान्त अर्थात् सम्बन्ध के गणन-मणन में रमण करने वाले। जो लोग पद तो बहुत गए हैं ज्ञान की सारा प्राप्त कर लिया शास्त्रार्थ करने में भी बजोड़ है किन्तु प्रमु-परियों में जिनसे लगन नहीं है केवल शास्त्रज्ञान में और व्याकरण के गोरम-बन्धे में फंसे हैं और अर्थों के बनेड़े हो से जिन्हें पुरमन नहीं मिले—ऐसे लोग भी प्रमु को पान में असमर्थ रहते हैं। ऐसे लोगों को यदि “मगवान्” का नाम दे दिया जाए तो अनुपपन्न न होगा। जिनका सम्भाव मगवान् हो गया है, भाषा कच्ची हो गई है, बाखी में मिठास नहीं रहा किन्ती से बात करने हैं, तो ऐसा प्रतीत हो। है कि अमी का पारंग कनकी समोष्टि प्रमु की ओर प्रवृत्त नहीं हो सकती। इस वेद-मन्त्र के अनुसार जो लोग अज्ञानी हैं, जो लोग अल्पज्ञान रखने वाले और अविश्वानी हैं, जो साग अमृत्यु या पेरु अवात् विरोधन-बुद्धि वाले हैं और जो लोग अज्ञानी होने हुए भी मगवान् हैं, ऐसे लोग प्रमु-परानों से वञ्चित हो रहते हैं।

## उसके पास

प्रभु-दर्शन की इच्छा रखने वालों के अन्दर सबसे पहला गुण यह होना चाहिए कि वह पूर्ण-रूप से ईश्वर-विश्वासी हों, प्रभु पर अटल श्रद्धा और अटूट-विश्वास से मन भरपूर हो। वह है, और सर्वत्र व्यापक है, हमारे एक-एक हावभाव को देखता है और कोई भी बात उससे छिपी रह नहीं सकती। शक्तिशाली इतना है कि सारी सृष्टि पलक-भर में समाप्त करने और इसे फिर नए रूप में बना देना उसके लिए उतना ही सुगम है, जितना हमारा आँख बन्द करके खोल देना। करोड़ों सूर्य्य उमके सकेत पर घूम रहे हैं, समस्त धन, कुल, सम्पत्ति उसी की है, ऐसे शक्तिशाली भगवान् की मैंने शरण ली है। ईश्वर-विश्वास के ज्वलन्त उदाहरण देखने हों, तो भगवान् दयानन्द का जीवन पढो। सारा समार विरोधी है और प्रभु-विश्वास के सहारे सहस्रों शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते हैं और किमी भी समय शिथिल नहीं होते। काशी में महाराज स्वामी दयानन्द अकेले ही थे। काशी के लोगों ने निश्चय कर लिया था कि दयानन्द को हानि पहुँचाएंगे। भारी भय था, इसीलिए बलदेवप्रसाद ने स्वामी जी के पास पहुँच कर कहा—“महाराज, आज बहुत भीड़ होगी, यह गुण्डों का नगर है। यदि फरुखावाद होता तो दस-बीस मनुष्य आपकी ओर भी होते।” स्वामी जी यह बात मुनकर हँसे और बोले—“योगियों का निश्चित सिद्धान्त है कि सत्य का सूर्य अन्धकार-रूपी सेना पर अकेला

ही विजय प्राप्त है। जान जाय तो जाय परन्तु ईश्वर की आज्ञा—जो सत्य है, वह न जाय। बसदेव। क्या चिन्ता है, एक मैं हूँ, एक ईश्वर है, एक भग्न है ?” यह है ईश्वर-विश्वास। इसीप्रकार महात्मा का जीवन वैज्ञानिक, संसार का जीवन-सा सत्य है, जो उसे सहन नहीं करना पड़ा और वह शेर की मौंठि सबका मुक़्तबसूल करता रहा और हर विपत्ति में घड़ी कहता रहा—

इत्यं वरं न वतं मृतु, तं वै लयी ताम् ।

जद्ये प्रीति क्षयी वरी, यद्ये क्वी यद्ये जाय ॥

मत्त को अपने हृदय में वह दृढ़ प्रतिष्ठा कर लेनी चाहिए कि मेरा मस्तिष्क केवल एक परमात्मा के सामने मुझेगा और किसी के सामने नहीं। मेरे मत्त-मन्दिर में छती देव का सिंहासन होगा और किसी का नहीं। भयदूर से भयदूर आपत्ति और बड़े से बड़ा मुक़्त भी मुझे प्रभु से विमुक्त कर सकेगा। संसार की समस्त विपत्तियों को सलक्ष्य कर यह कह दे—

ओम् इत्तं मुक्त्तु नो निरी विरम्भविदारत । वचना इत्त इत्तं मुक्त्तु ॥

उत्त न मुक्त्तु परिषोक्त्तुर्म्म इत्तकः । स्वमेदिन्मत्तं शर्मदि ॥

(श्रु १७१२.९.)

‘बाहे हमारे सित्तक यह कि तुम जो इन्द्र—परमात्मा की ही पूजा करने हो सो तुम यहाँ से और अन्य ज्ञान से भी निकल जाओ। ॥१॥’ और बाहे परमात्मा-जन हमें सौमाम्यवान् कहें, किन्तु हे अद्भुत कर्मों वाले परमात्मा इन्द्र। हम तेरी ही शरणा में रहें’ ॥२॥ मत्त की कोई शक्ति मत्त के प्रभु-विश्वास को शिथिल नहीं कर सकेगा। इसप्रकार का ईश्वर-विश्वास मत्त के हृदय में होना चाहिए।

हर हात्त में सुराहात्त—

पूखी बात मत्त के हृदय में यह होनी चाहिए कि परमात्मा ही

हमारी माँ है और निश्चय ही माँ जो कुछ करती है, हमारे कल्याण के लिए करती है। जिम भी अवस्था में वह हमें रखे, उसी में हम प्रसन्न रहें। इसका प्रयोजन यह नहीं कि भक्त आलसी और दरिद्री बन जाय। नहीं, अपितु भक्त को तो पूर्ण-रूपेण प्रयत्नशील होना चाहिए। प्रत्येक कार्य को पूरे ध्यान से सम्पन्न करना चाहिए, पूरी मेहनत करनी चाहिए। यदि कोई रोग अथवा आपत्ति आ जाय तो उसके निवारण के लिए अपनी और दूसरों की बुद्धि का प्रयोग करना चाहिए, अपनी ओर से कोई कसर उठा न रखनी चाहिए, किन्तु जब उसका परिणाम अच्छा या बुरा (हमारी दृष्टि में) निकल आए, तो प्रभु का धन्यवाद करना चाहिए कि भगवान् तूने हमारे लिए जो उचित समझा, वह कर दिया, हमारा कल्याण इसीमें होगा। इसीको सन्तोष भी कहते हैं। अपनी ओर से पूरा प्रयत्न कार्य-सिद्धि के लिए करने के पश्चात् उसका फल जैसा भी मिले उसपर सन्तुष्ट हो जाना और यह समझना कि प्रभु की ऐसी ही इच्छा थी और इसीमें मेरा कल्याण है, यह भाव भक्त के मन में होना चाहिए।

माँ अपनी सन्तानको कभी भी दुःखी देखना नहीं चाहती। वह बच्चों को दूध पिलाती है, अच्छे-अच्छे भोजन खिलाती है, सुन्दर वस्त्र पहनाती है, चूमती है, प्यार करती है, परन्तु बच्चा रोगी हो जाय तो मिठाई उसके हाथ से छीन लेती है, और कड़वी औषधि पिलाती है, और जब कभी बच्चा शरारत करता है या कड़वी दवा नहीं पीता, तो चपत भी लगा देती है। जब भक्त ने परमात्मा को अपनी माता स्वीकार कर लिया तो फिर यदि हमारी दृष्टि में हम पर कोई आपत्ति आती है, निर्धनता, पुत्र-वियोग, पति-वियोग पत्नी-वियोग, पितृ-वियोग, या ऐसे ही और कष्ट आते हैं, तो भक्त को यही विश्वास होना चाहिए कि मेरा कल्याण इसमें था। वह



राधे क्यों ? वह हाहाकार क्यों करे ? उसके अन्तर से हो यह  
ध्वनि निकलेगी—

बीता रहे तुझको ना वह से घर छोड़े ।

एक हो वह मऊ प्रेमी कसब है नु पुकारे ॥

राजी है हम उछीमें मिलीं ठेरी रब ? है ।

ना नूनी कदम है और नूनी बहण है त

पुछ कोमों का पिचार है कि प्रमु-कृपा केवल सांसारिक-धन  
सम्पत्त केवल और सुख ही में दिखई देती है । जो सांसारिक दृष्टि  
में बहुत मुझे हों, उनके विषय में लोग कहते हैं कि इस्तर प्रमु की  
महली छना है, परन्तु मऊ को प्रेमा नहीं ममगना चाहिये । प्रमु  
छना की कर्वा विन रात संसार के सब प्राणियों पर हो रही है, वह  
न रुकती है, न रुकेगी । हाँ वह ठीक है कि कभी वो वह सुन्दर से  
सुन्दर रूप में प्रगट होती है और कभी बाभलस सं बीभलस रूप में ।  
जब कोई मऊम आपरेराम कर रहा होता है और शरीर को कितना  
ही और फरक कर रहा है, वो बाइ-दृष्टि से देखने वाला मादान  
धो यही कहोगा कितना निवृषी है यह डाक्टर, किम बहरहमी से  
आदमी को काट रहा है । रोगी के पीछने-पिछाने पर भी वो इसे  
बुझा नहीं पाये परन्तु हम मूक की बातें सुनकर सर्वत्र आपरेराम  
का काम छोड़ नहीं देता क्योंकि वह काम है कि रोगी का कस्याय  
इसमें है कि हमसे पीर-पत्रक की जाय ।

मेरे एक मित्र की पति-त्र । पत्नी का देहान्त हो गया । वह  
अपना पत्नी के स्वमात्र हमका मुसीबत उसकी फायदुरास्त  
ओर उसके प्रेन पर मुगध थे । जब वह बामार पत्नी ने कइने  
इलाज में कोई कसर न छना रखी । परन्तु रोग कम होने की बजाय  
बढ़ता ही गया और रोने हुए पति को छोड़कर वह रूची सिपार

गई। मेरे मित्र की अवस्था बहुत बिगड़ी। उन्हें साग ममार अन्व-  
कारमय दिराई देने लगा। ज्ञान की किर्मी बात से उन्हें शान्ति न  
मिलती थी, परन्तु अब, जब से प्रभु-भक्ति के मार्ग पर चलने लगे  
हैं, आत्म-दर्शन की कुछ लटक लगी है तो खय ही कहते हैं—  
“भगवान् ने मेरा बडा कल्याण किया है, मेरी आयु समाप्त हो रही  
थी मुझे पत्नी-प्रेम भगवान् की ओर जाने ही नहीं देता था। अच्छा  
हुआ, जो उनसे लुटकारा मिल गया, याद ऐसा न होता तो मैं जिम  
अमृत का नित्य-प्रति पान कर रहा हूँ, कैसे करता।”

इसीप्रकार हमें कुछ पता नहीं होता कि हमारा कल्याण किस  
में है, हमारी आँख, हमारी बुद्धि बहुत दूर तक देख नहीं सकती।  
हाँ ‘उत्तकी’ आँख बहुत दूर तक देखती है, वही जानता है कि हमारा  
कल्याण किसमें है। इसलिए भक्त जहाँ ईश्वर-विश्वासी हो, वहाँ  
उमके अन्दर यह पक्की धारणा भी होनी चाहिए कि प्रभु सदा  
हमारा कल्याण करता है। वह अद्भुत है और अपने अद्भुत  
उपायों से से ही वह काम करता है। कुछ बातों को हम समझ जाते हैं  
और कुछ को समझ नहीं सकते। अतएव जिस हात में वह रखे,  
उमी में खुशहाल रहने का स्वभाव भक्त को बनाना चाहिए।  
**आत्म विश्वास—**

इन दो बातों के बाद, तीसरी बात ‘आत्म-विश्वास’ स्वयमेव  
भक्त में उत्पन्न हो जाता है। अपने आप पर भरोसा करने की भीतर  
से प्रेरणा होने लगती है। वह अपने आपको फिर तुच्छ नहीं सम-  
झता, अपने आपको सारे ससार के परिपालक पिता का पुत्र अनुभव  
करके फिर भला कौन तुच्छ रहेगा? महान् के साथ मिल कर तो  
वह महान् हो गया, अब वह कभी अपने आपको असहाय, अनाथ  
और असमर्थ नहीं कहेगा। वह सदा आशावादी बना रहेगा,  
निराशावाद (Pessimism) कभी उसे छू भी न सकेगा, प्रत्येक

असे अथ में शूरवीरों की तरह वह भाग लेगा और पिजबी होगी।  
 अथरत मय, आसन्न्य और प्रमाद उसके निकट न आएगा। उम-  
 का हृदय आस से भरपूर होगा और उत्साह की शक्ति उसे कभी  
 उखा नहीं होन देगी। वह दूसरों के कर्मों पर स्वार होन के अर्थ  
 पर स्वयं अपना काय सम्यक्त करने वाला बन जायगा। आत्म-विश्वासी  
 मयंकर से मयंकर क्षेत्र में भी कूदने को उत्सव रहता है, क्योंकि उसे  
 अपनी मुक्ता पर, अपने मणिपूक पर और अपने आप पर पूरा  
 भरोसा होता है। वह फिर दूसरे की कमाई पर कलाबाई हुई दृष्टि  
 से नहीं देखता अपितु दूसरों की कमाई पर निर्भर रहना पाप  
 समझकर अपने हाथ से कमाता है, यह तो फिर इस सिद्धांत को  
 मानता है—

एकले कर हर कर करो कर हर कर न करो।

आदि कर हर कर करो यदि दिव मरव करो ॥

प्रभु-मन्दिरों की सेवा—

जसे जाने वाले भक्तों के मन्दिर एक और मुख्य-गुण यह होता  
 है कि वह सारे मूर्तों को आत्मा में और सब मूर्तों में आत्मा को  
 देखते हैं। सारे उसे परमात्मा के मन्दिर दिखाई देते हैं और  
 वह कौन सक्त है, जो अपने प्रियतम के किसी भी मन्दिर को देख  
 कर कुरी से अक्षय न पड़े प्रभु की सारी प्रजा फिर उसे अपना  
 सम्बन्धी ही दिखाई देगी वह किसी से भी द्वेष नहीं कर सकेगा  
 न ईर्ष्या न स्पर्धा, न शत्रुता कुछ भी बाकी न रहेगा। फिर तो वह  
 बही गया फिरेगा—

कह मैं इतनी कितने अथ इत्यम भी हां अथक।

एकमेव मे वही दिव मैं अथ कोही अथक? की ॥

वही नहीं अपितु यदि वह अपने मगवान् के किसी मन्दिर को

मैला—दूटा हुआ या गन्दा देखेगा तो वह उसे तत्काल ठीक करने में लग जाएगा। ऐसे भक्त मनुष्य-मात्र से प्रेम करने लगते हैं, उनके लिए कोई वेगाना नहीं रहता। विशेष-रूप से दु खियों के लिए उनका प्रेम-स्रोत बह निकलता है। भक्त से मेरा तात्पर्य वह 'भक्त' नहीं, जो मनुष्यों से दूर भाग कर वनों और पर्वतों की कन्दराओं में जा बैठे। प्रत्युत भक्त वह है, जो अपनी चिन्ता छोड़ प्रभु-मन्दिरों की चिन्ता करे। सच्चे भक्त का गुण ही यह है कि वह स्वयं हानि सहकर भी दूसरों को लाभ पहुँचाए। जिस प्रभु-मन्दिर में ज्ञान का दीपक नहीं जलता, भक्त का कर्त्तव्य है कि उसमें दीपक जलाये, जो मन्दिर अन्न-रूपी चूना, सीमेंट के अभाव से जीर्ण-शीर्ण हो रहा है, भक्त को चाहिए कि उसकी ओर ध्यान दे।

निस्सन्देह, भक्ति से तात्पर्य यही लिया जाता है कि स्वर्ग मिल जाय या मोक्ष मिल जाय। जो सकाम-भक्त होते हैं, वह सासारिक सुखों की खरीदारी करते हैं। परन्तु सच्चा भक्त इन तीनों बातों से ऊपर उठ जाता है। वह न इस दुनिया का राज्य चाहता है, न स्वर्ग की इच्छा उसे सताती है और न ही वह मुक्ति के लिए उतावला होता है। वह आनन्द में लिप्त होकर पुकार उठता है—

न त्वह कामये गज्य, न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।

प्राणिना दु खताप्ताना, कामये दु ख-नाशनम् ॥

“न मुझे राज्य की कामना है, न स्वर्ग की और न ही मोक्ष की। हाँ, मैं यह चाहता हूँ कि भगवान् मुझे समार के दु खों से तपे हुए लोगों के कष्ट-क्लेश को दूर करने की शक्ति प्रदान कर दें।”

यही इच्छा उसे व्याकुल करती है और इसी धुन में वह दिन-रात लगा रहता है—

अपनी फिक्र न कुछ करें, प्रभु-प्रेम के दास ।

सूई नगी छुद रहे, और सक्का सिये लिवास ॥

मनु के हृदय में अपने और पराये का भाव ही नहीं रह । जब वह अपने और दूसरों के शरीरों को भगवान् के मन्दिर ही समझता है, तो फिर वह दूसरों के दुःख, अष्ट और क्लेश को अपना ही दुःख समझेगा और अपनी शक्ति के अनुसार उसे दूर करने का प्रयत्न करेगा । इन सब बातों से ऊपर वह कभी अभिमान न करेगा प्रत्युत दिन प्रति-दिन नम्र ही होता जाता जायगा ।

मनु-दराम के अविद्यारी बनने वालों में यह गुण भी होता है कि वह महा इत जोड़ में रहते हैं कि उन्हें कोई भगवान् का प्यारा मित्र और वह प्रभु तक पहुँचने का माग उन्हें बल्लभ है ।

ऐसे भक्तों को भगवान् अपने दर्शनो से यत्नित नहीं रखते, वह छोटे बन्पर विशेष कृपा करते हैं । इही कुछ गुणों को धारण करने पर मनुष्य भगवान् के दर्शन कर सकता है ।

## मेरा शत्रु—मेरा मित्र !

मेरे मन । तू मेरा मित्र भी है और शत्रु भी, तूने क्या-क्या खेल खिलाये हैं, कैसे-कैसे नाच नचाये हैं, कहाँ-कहाँ लिए फिरा है, कबसे मेरी नाक में नकेल डाले मुझे घुमा रहा है—कितने जन्म बीत गए, कितने युग चले गए, कितनी सृष्टियाँ बनीं और बिगड गईं, कबसे तू मुझे लिये फिर रहा है। बतला तो मही, आखिर यह कब तक ? अभी और कितने युगों, कितनी सृष्टियों, कितने प्रलयों और महा-प्रलयों तक तू मेरी गर्दन पर सवार रहेगा ? बहुत हो चुकी, अब बस कर, थक गया हूँ तेरी इन यात्रा से, तेरे इन खेलों और तमाशों से, कुछ दया कर, मेरे दूटे हुए शरीर को देख, मेरी टेढ़ी पीठ की ओर निहार, मेरी थकी हुई आँखों में झाँककर देख, मेरे श्वेत केशों को देख, कितनी ही बार ऐसी यातनाएँ, कितने ही जन्मों में मर चुका हूँ, परन्तु तू पत्थर का बना है या लोहे का, तूने मेरी कोई टेर नहीं सुनी, तू बार-बार मुझे कहीं से कहीं घसीटता हुआ लिये जा रहा है, मेरा एक-एक अङ्ग टूटा जाता है। मेरे शरीर कई बार पिस गए—कभी तो विषय-वासनाओं के नोकाने काँटों में उलझा देता है, तब एक-एक नस-नाड़ी से रक्त प्रवाहित हो जाता है, मैं तडपता हूँ और तू मेरी इस तडप को देख-

१—दिल ग्याह है वाल सब अपने हैं पीरी में सफेद ।

घर के अन्दर है अन्देरा और बाहर चाँदनी ॥

कर किलाखिला कर हँस देता है—ओ रे मिहंजी ! कमी तू क्रोध क  
 जलते अङ्गारों की अङ्गीठी में मुझे झोंक देता है, मेरे शरीर पर  
 एक-एक रोम चम्पायमान हो जाता है, सब कुछ धसने लगता है,  
 आँसू लाख अङ्गारा बन जाती हैं, सारा शरीर ही जलने लगता है  
 और तू इस त्मारो को चुपचाप देखता रहता है, तूने मेरा सब कुछ  
 छूट लिया है, मेरे देह-राम्य में तूने बिड़ल मचा दिया म आँसू अमू  
 में रखी है, म हाथ न पाँव न वृस्ती इन्ट्रियो यह मारे कर मारा  
 देह-राम्य त्रिसछा मैं राजा कहलाता हूँ, बारी हो चुका है। मेरा  
 आद्या के बिना ही यह कमी ग्वर को मेरी राजधानी में ले आता है  
 कमी किसी और गेग को। मैं चाहता कुछ और हूँ, यह करता कुछ  
 और है। इसी प्रकार ओ मन ! तूने आनन्द के केन्द्र में मी इस-  
 बल मचा ही है, ओ पद्मपत्र रखने बाबों में शिरोमणि । तूने मेरा  
 सब कुछ छुटा दिया है, मैं अब न राजा हूँ—न बनी कोई भी  
 सम्पत्ति मेरे पास नहीं रखी सब कुछ तू ब्रह्म कर ले गया—तो फिर  
 अब तो मुझ कर्नाक को छोड़ दे । मेरी इन दुबनीय अवस्था में  
 मी—जब कि मुझ में एक पग और आगे रखने की शक्ति नहीं रखी  
 चाबुक पर चाबुक लगए जा रहा है। मेरी बेदना कर मेरी पीड़ा  
 का मेरी चिन्हाइट का और हाहाकार कर तुम्हें कोई बिचार नहीं  
 आता ! बस अब बहुत हो चुकी अब सहन की शक्ति नहीं है, मैं  
 अब तेरे बंगुल से मुक्त होछा हूँ परन्तु—ओह ! यह क्या तू फिर  
 मुझे लिये जा रहा है, कहीं पटकेंग तू अब मुझे !

**आकाश-बाणी—**

यह नहीं मुनेगा कुछ सो यह हो तेरा मत्मानारा ही कर देगा ।  
 बचना है, तो एक ही जगह है और यह वह कि अब तू इस पर सवार  
 हो जा और इसे नकेल हास कर टक्य से इस पकड़ रख और फिर  
 देछ यही मन जो तेरा शत्रु बना है, तेरा मित्र बनता है या

नहीं। इसकी कोई बात मत मान, यह सटाई खाने को मागे तो इसे मीठा खिला—यह मीठा मागे तो इसे लवण दे, यह सैर करने को कहे तो कोठरी में बन्द कर दे, यह कोठरी में बैठे रहने को कहे तो इसे लम्बी यात्रा पर ले जा।

मन लोभी मन लालची, मन चंचल मन चोर।

मन के मति चलिये नहीं, पलक-पलक मन और ॥

### परिवर्तन—

श्रव तो तू प्यारे मन। मेरा मित्र बन गया है न। कितना श्रद्धा है तू, कितना श्राद्धाकारी, कितना भला है तू, मेरे कितने ही विगड़े काम तूने सुधार दिए, मेरा हर काम कितनी ही तेजी से तू कर देता है और श्रव काम सम्पन्न करके किम उत्सुकता से तू फिर 'ओ३म्' के जाप में लग जाता है, याद है तुम्हें उस दिन की बात, जब मैंने तुम्हें कहा था, "आज भगवान् के पास ले चलो।" तब तूने कहा, "मेरी गति वहाँ नहीं। हा, भगवान् के द्वार पर ले चलूंगा। उसे खटपटा कर भीतर जाने की श्राद्धा भी ले दूंगा परन्तु मैं अन्दर नहीं जा सकूंगा।" और तब मैंने कहा, "हा, ऐसा ही मही", और तू मुझे मेरे अच्छे मन। अपने ऊपर मुझे सवार करके ले गया था, कितनी मनोहर थी वह यात्रा, कैसे दृश्य आण थे, कितने सुन्दर वाजे बजते थे—ऐसा प्रतीत होता था कि कोई बहुत निपुण बंसी बजा रहा है। तब एक दम ऐसी सड़क की ओर तुम मुड़े थे कि जहा सन्नाटा था, सब कुछ ठहरा हुआ था, निस्तब्ध—एक दम निस्तब्ध, वायु भी नहीं चलती थी, प्राण-अपान में मिलकर धीरे-धीरे नहीं अपितु तेजी से परन्तु पूर्ण शान्ति के साथ जा रहा था, उस समय एक दम महसूस सूर्य और चाँद भी एक साथ प्रकाशित हो उठे थे। इतना प्रकाश था और ऐसा प्रकाश था कि जिसकी उपमा नहीं दी जा सकती। उसी क्षण एक अतीव सुन्दर-मनोहर रङ्ग-विरङ्गा फाटक



सुख था। इसके सुखों ही न जान तु कहां पठा गया थीर तू ही क्यों ? अब तो मुझे अपना भी पता नहीं रहा। न सुय रहे बेन बाँध, न ही तुझ और धनक सुस्ते ही वह तुव दखा विमरा पर्यन करन के लिए वाणी साय बस लगती है परन्तु एक रुग्ण हो क्या—एक अक्षर भी नहीं कह सकती। आंकों न दखा तो है, पर वह वह आंग न थी वह कोई और ही थी। मेरे मित्र ! एक बार फिर वही लो जलो। तुमसे मैं अब और कोई काम वा सेवा नहीं इसी सुख काय क लिए तुझे निश्चित कर रखा है, मेरा तू कोई और काम कर वा न कर, परन्तु इस काम को करने पर मैं तुझे बाधित करता हूँ मुक्त तू वैकुण्ठ में न हो बस—मुक्त तू महा-बरा में मा न हो बस, मुझे तू किसी और लवा भी भी खैर न कर्य मुझे हो वही लो बस, वहाँ प्रीतम के दरोंमें से मैं सुरक्षा हो गया हूँ।

क्य अब वैकुण्ठ ही अन्तर्गत हो करे ।

रहितन होय तुमसे वह प्रीतम गल बौर ॥

ओ मेरे मन ! तू अब कितना अन्ध हो गया है। मेरी प्रत्येक काम रामना को पूर्ण करन में तू सरसक प्रयत्न करता है, तुझे अब वह पहली गर्दगियाँ पसन् नहीं आती न ही वह शरारतों अब तुझे आती हैं क्यों मन्दा ! वह पहली बातें बाए करक तुझे ज्ञान हो अवश्य आता होगे। अब, एक आनन्द वा वा अब ? वृत्तों की गहनें अन्ने में अधिक सुरी मिछी थी वा अब, वृत्तों के जीवन बधान में अधिक प्रसन्नता होती है। अपने उस जीवन थीर इस जीवन से बस। मगबाए को धम्यवार कर कि तरे मन्वर वह परिवर्तन पिया हो गया—

जसे वह मव वाप वा करय जीवन-पत्र ।

कन हो वन ईका मय मेरी तुम-तुम कल ॥

# भक्ति की पुकार

ना परानुरक्तिधरे ।

ईश्वर में परम-अनुगम का नाम ही भक्ति है ।

प्रियतम । न बल है, न शक्ति । रोगी शरीर तेरी पूजा की सामग्री एकत्रित करने में भी अममर्थ है । तेरे इस मन्दिर की मरम्मत करने का भी अब साहस नहीं होता, न जप-बल, न तप-बल, न वाहु-बल, न धन-बल, किमके सहारे तेरे निकट पहुँचूँ । ऋषि यह कह गये हैं कि “नायमात्मा बलहीनेन लभ्य” अर्थात् बलहीन व्यक्ति आत्म-प्राप्ति नहीं कर सकता । तो फिर क्या मैं यहीं पड़ा रह जाऊँगा, इसी भवर में गोते खाने के लिए ? न मन्त्र आते हैं न यंत्र, न यह जानता हूँ कि तेरी स्तुति कैसे करूँ, किन शब्दों में तुझे पुकारूँ, कोई शब्द ही मेरे पास नहीं है, फिर तेरे गुणों का वर्णन कैसे करूँ, तेरा आह्वान कैसे किया जाता है, इससे मैं अनभिज्ञ हूँ । कहते हैं प्राण-अपान का संयोग कर देने से तू मिल सकता है । मुझे तो यह विधि भी नहीं आती । ध्यान कैसे लगाया जाता है, इससे भी मैं परिचित नहीं, कोई मुद्रा भी मैं नहीं जानता, न हठ-योग, न ध्यान-योग, न कर्म-योग, न ज्ञान-योग । किसी पर भी मेरा अधिकार नहीं हो सका । किस विधि प्यारे । तुझे पा सकूँगा, कोई मार्ग दिखलाई नहीं देता । रोना भी तो नहीं आता और यदि रोऊँ भी

१—शाण्डिल्य ऋषि का भक्ति-दर्शन १-१-२ ।

तो क्या कहकर रोऊँ—हाँ, केवल एक—मौर निरिषत-रूप से एक  
 बात जानता हूँ कि तू मेरी माता है, और ऐसी माता है, जो कदोरा  
 हरने वाली है।

बहिं संपन बहिं सखन्य बहिं लौरन मत दान ।

मात मणेसे रहत है ज्यो कसक बाणन ॥

—१२—

मैंने यह भी तो सुना है माता ! कि जबतक तुम अपनी  
 कृपा का पात्र किमी को नहीं बनाती, तबतक न उमझी मेधा  
 काम आती है, न बेद फटा हुआ काम पहुँचाता है, तुम स्वयं जिस  
 को चुन लो उसी को तुम्हारे दरशन का अधिकार मिलता है। तो  
 मेरे ऊपर कृपा-दृष्टि कब होगी ? मैं कबतक तेरे द्वार पर सड़ा माँ-  
 माँ पुकारता रहूँगा ! माँ तूने अपनी बाणी में कहा है—

न चते बान्तरव उच्यन्व शेषः ॥ अ ४-१२ ११

पूरा प्रयत्न करके जबतक कोई धक नहीं जाता, तबतक  
 ईश्वर की मित्रता प्राप्त नहीं होती और मैं अब धक गया हूँ  
 ना, झिठनी दूर से बसा हूँ—तारे अंग बूर हो गए हैं मेरे बस-भरे  
 नेत्र, मेरा मस्तिष्क-मुण्ड, मेरी कर्पितो हुई मुद्राएं, मातः ! क्या तेरे  
 हृदय पर पोट नहीं करती। माँ लो अपने शिशु को बुझी बरगड  
 एक क्षण की भी देर नहीं करती सौ काम छोड़कर भी बसे गोब

(१) माक्याया प्रथमैव सन्धी न वैचय न बहुना भुटेन ।

क्यैरेव ज्युने तेन सन्धकारैव धात्वा निरुद्धो लर्न रथम् ॥

यद् ध्यात्वा न प्रथम के अर्थ का अर्थ है न वैचय के न बहुना तुम्हारे से,  
 ही झिठनी यह ध्यान चुन लेना है नहीं बडे का अर्थ है, बतके लिए यह  
 अर्थ अर्थात् प्रथम अर्थ है।

अध्याय १२१—सुन्दर २-१२।

मैं उठाकर प्यार करती है, पवित्र स्तनों से अमृत पिलाती है, माँ !  
मुझे भी ले लेना अपनी गोद में, उठा ले मुझे भी इस हीन-  
श्रवस्था से, पिला दे अमृत, पिला दे—अब बहुत प्रतीक्षा न करा ।

हरि जननी । मैं बालक तेरा, काहे न अबगुन बगसहु मेरा ।

मुत अपराध करे दिन केते, जननी के चित रहे न तेते ॥

तेरे जैसी दयालु माता ने भी यदि बच्चे की टेर न सुनी तो  
और कौन सुनेगा ।

तुम प्रभु दीन-दयालु जी, आये पहा हूँ द्वार ।

अब जैसा कंसा हूँ प्रभु, कीजे यह न विचार ॥

हाँ, मैं तुम्हारी कृपा-दृष्टि का याचक हूँ, अपने अपराध देखूँ  
तो कुछ बचता दिखालाई नहीं देता, तेरी अपार कृपा की ओर निहारूँ  
तो एक क्षण में बेढा पार होता दीखता है—

मुझ में तो अबगुण घने, तुम गुण भरे जहाज ।

अब जैसे कैसे घने, राखो मोरी लाज ॥

—x३x—

पापों की गठरी कितनी भारी हो गई है । अब तो उठाने की  
शक्ति नहीं रही । कितने ही भक्तों ने बतलाया है कि तू पापियों के  
पाप दूर कर देता है, तू पतितों को उठाता है, तू अधमों का  
उद्धार करता है । क्यूँ जी ! यह सब बातें क्या ऐसे ही कही जाती  
हैं । यदि ऐसे ही नहीं तो मुझसे अधिक दयनीय और कौन होगा ?  
पतित-पावन । मेरे जैसे पतित का उद्धार करके तुम बहुत बड़े  
पतितोद्धारक कहाओगे । यदि तेरे द्वार से केवल अच्छे मन वाले  
और योगियों को ही भिक्षा मिलती है, केवल ज्ञानी ही वृत्त होते  
हैं, तो फिर मैं क्या व्यर्थ चिल्ला रहा हूँ, कहो तो सही, सच्चे  
साहब । स्वस्थ-पुरुष या स्त्री को वैद्य के पास अथवा हस्पताल में  
जाने की क्या आवश्यकता है ? धनी भीख माँगने धनी के दरवार

में क्यों जाव ? जिसके बस ठीक हैं, उसे दर्जी का दरवाजा देखने की क्या जरूरत है। फट गए हैं जिसके कपड़े काँटों से जलम-जलम कर, वहीं दर्जी को हूँ कथा फिरोग्र। मग-रूपी कपड़े हो गए हैं मैल, वहीं बोबी के पास जायगा। ओ बोबी ! मैं मैले ही कपड़े लेकर तेरे पास आया हूँ।

बेविया राग दिलों के बो दे।

मेरा मन रोगी है ओ परम-बोध ! इसकी चिन्किस्ता कर दे मेरे आचनार को मुन और मरी पीड़ा को हर दे। यदि तुने भी गुण और अबगुण देखकर ही भिन्ना देनी है तो फिर तुम्हें "समदर्शी" कहने वाले यह मचन बोलने से पहले सौ बार सोच लिपा करेंगे। सुरदास तो आपके इसी गुण को देखकर इकठारा हाव में किये रो-रो कर मुकाब छटा था—

अन्तुख फित व बरो प्रभु मेरे।

अन्तुख फित व बरो ॥

समदर्शी है नाम तिरारी चहो तो बार करो।

इक बेविया इक नाक अगरे मैले ही नीर नरो ॥

बब मिलकर इक कर्त नके तब छुलरी ? बम परो।

इक लोहा पूरा मैं राख्यो इक पर बबिह ? नरो ?

बारस उख अन्तुख व देखे बंजन करठ करो।

प्रभु बी मेरे, अन्तुख फित व बरो ॥

यदि आपने ठोस माप ही से काम लेना है तो फिर हमें कोई और द्वार बठलाओ जहाँ हमें भी भिक्षा मिल सके, परन्तु—

तेरे दर को खोज कर हम बेविया चारों चारों।

वा क्या है और कोई नामे बीठा पर हमें ॥

नहीं जोड़ेंगे तेरी चौकट अब इसी द्वार पर माखों का बाल

१—मना २—बलदर

होगा, कबतक तू नहीं सुनेगा । हमें भजन करना नहीं आता—न सही, हमें गुण-वर्णन की विधि नहीं आती, तो क्या हुआ ? हम तो तुम्हें पुकारते ही चले जाँयगे, तेरा ही नाम, हाँ, तेरा ही नाम और कुछ नहीं हम जानते, केवल तेरा नाम—

श्रोम् का सिमरन नित्य करो, जिस विधि सिमरा जाय ।

कभी तो दीन-दयाल जी, बोलेंगे सुसकाय ॥

—x४x—

और यदि तेरे द्वार से हमें उस समय तक भिक्षा नहीं मिलनी जबतक हमारी झुटियाँ दूर नहीं हो जाएगी, तो फिर चलो यही काम पहले कर दो, झुटियाँ दूर करने वाला भी तो तू ही है। तूने ही तो वेद में कहा है कि कभी भीड़ आ बने तो मुझे पुकारो। अब तुम्हें पुकार रहे हैं। ले, तेरे ही पवित्र वाणी में अपनी टेर सुनाते हैं—

यदि दिवा यदि नक्तमेनाँसि चक्रमा वयम् ।

वायुर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुबत्वँहस ॥

( यजु० २०—१५ )

जो दिन में—जो रात्रि में, अज्ञात अपराधों को हम लोग करें उस समग्र अपराध और दुष्ट व्यसन से हमें वायु के समान पृथक् कर दे ।

यदि जाग्रद्यदि स्वप्न एनाँसि चक्रमा वयम् ।

सूर्यो मा तस्मादेनसो विश्वान् मुबत्वँहस ॥ ( यजु० २०-१६ )

यदि जागृत अवस्था में और यदि सोते हुए मैं पाप में फसा हुआ पाप कर बैठा हूँ, उस समग्र पाप और प्रमाद से सूर्य के समान मुझको मुक्त कर ।

यद् ग्रामे यदरण्ये यत्समाया यदिन्द्रिये ।

यच्छुद्धे यदये यदेनश्चक्रमा वय यदेकस्याधि

धर्मणि तस्यावयजनमसि ॥ ( यजु० २०-१७ )

हम लोग जो गाँव में जो बज्जल में, जो समा में जो मन में, जो शूद्र में, खामा या बैरव में जो एक के ऊपर धर्म में, तथा जो अन्ध अपराध करते हैं अथवा करने वाले हैं, उन सबसे मुक्ति के साधन आप ही हैं।

क्ये त्तिं ननु से इत्यन्त मन्त्रे कतिपुत्रं बृहस्पतिं  
 पश्यन्तु । तं चो मत्तु मुक्तस्य कल्पतिः ॥

(मह १९—१)

जो मेरे नेत्र की वा अन्तःकरण की मूर्त्तता वा मन की व्याकुलता है, उसको बृहस्पति परमेश्वर मेरे लिए पूर्ण करे, जो सब संसार का रक्षक है, वह हमारे लिए कल्याणकारी होवे।

कहो, जब तो मेरी पुण्यद मुनोगे न—तेरे ही वेद के अन्तर, तुने ही अपने जिम्मे जो कर्त्तव्य लिखा है, जतीभी बाह तुम्हें दिख रहा है। हम पाप से सर्वदा और सर्वथा दूर रहना चाहते हैं, परन्तु वह फिर भी हो जाते हैं। अतएव तेरे सम्बन्धी जितने पाप हुए हैं या होते हैं, उनसे हमें अज्ञान कर दे और हमारे मन में जो गहरे पङ्क गए हैं, मागवान् वृ ही उन्हें भरने में समर्थ है। मर दे उन्हें, कर दे पूर बुद्धियाँ और एक बार पेसी दृष्टि दे दे जो तुम्हें ही देखनी रहे, हाँ तुम्हें ही।

## भक्त की बात भगवान् से

आज तुम्हें अपना आर्त्तनाद सुनाता हूँ, इसे सुन मेरे भगवान् !  
यह तेरे भक्त के अन्तरात्मा की ध्वनि है—

### सुखदायक हाथ !

ॐ १ स्य ते रुद्र नृडयाकुर्हस्तो अस्ति भेषजो जलाय ।  
अपभर्ता रपसो दैव्यस्याभि नु मा शृपम चक्षमीथा ॥

(ऋग्० २-३३-७)

हे दुःख-नाशक ! वह तेरा सुखदायक हाथ कहाँ है, जो दुःख-रोग हरने और आनन्द देने वाला है, जो देव-सम्बन्धी पाप को दूर करने वाला है। हे सुख की वर्षा करने वाले ! तू अब तो मुझे (अभिचक्षमीथा) क्षमा कर।

— ० —

### मेरे दुःख की कहानी !

ओ३म् स मा तपन्त्यमित सपत्नीरिव पर्शव ।

नि वाघते अमतिर्नम्रता जसुर्देर्न वेवीयते मति ॥

(ऋग्० १०-३३-२)

तपा जा रहा, सताया जा रहा हूँ, सपत्नियों के समान आत्मा को स्पर्श करने वाले बुरे भाव मुझे सब ओर से तपा रहे हैं, अज्ञान ने अत्यन्त दुःखी कर रखा है, नगा हो गया हूँ, हिम्मा-भाव हर समय सता रहे हैं, पक्षी की भाँति मेरी मति चञ्चल हो रही है, ओह ! मेरे दुःख की कहानी !



## बूहे काट रहे हैं !

मूत्रो व शिरस्य न्यस्तित्वा मासः शोतरं ते शतश्रयोः ।

सङ्घे ह्यसौ मन्वन्ति च मृगयन्ति पिबन्ति चोत्तम ॥

(श्र १-११-१)

हे बहुत कम बाले ! तेरे स्तोत्र होते हुए भी, मुझको मानसिक पीड़ार्थे विविध प्रकार से आ रही हैं, जैसे बूहे पान सरो हुए सूख को खाते हैं । हे पेशबन्धाले ! हे इन्द्र ! तू इमें एक बार अच्छी तरह सुली कर दे और पिशा की तरह हमारी रक्षा कर ।

## हिमाद्रि पर्वत और सागर !

कस्मै हिमश्रयो महिष्य नत्स ससुरं रस्य च्याहुः ।

कस्मैमा श्रियता नत्स बहू कस्यै ईवाय इभित्ति विभित्ति ॥

श्र १ — ११ — ४

जिसकी महिमा को मे हिमाच्छादित पर्वत कर रहे हैं, और जिसकी महिमा को नदियों सहित बह समुद्र गा रहा है, ये सारी विरघार विमन्त्री हैं और जो इसके बाहू के समान हैं, इस सुल-सुरूप परमात्म-वेश का मैं इन्हीं द्वारा पूजन करूँ ।

## कब वह दिन आएगा ?

वद्य त्वया ह्य्याः । सं परे व्यः क्वा न्यन्तर्व्ये सुचानि ।

किं मे इत्यप्यहं चान्ये सुपेय क्वा सतीर्त्तं सुमना व्यधिकल्पम् ॥

श्र ४ — ४१ — २

कब वह समय आवेगा जब मैं अपने आत्मा से परमात्मा के साथ सम्बाध करूँगा कब मैं प्रभु का अन्तरेण बनूँगा कब वह प्रसन्न होकर मेरी भेंट को लव करेगा कब मैं प्रसन्न हुए मन के साथ कम मुल्लाठा के दर्शन करूँगा ।

## वह पाप तो बता दे !

पृच्छे तदेनो वरुण दिदक्षुषो एमि चिकितुषो विपृच्छम् ।  
समानमिन्मे ऋषयध्विदाहुरय द तुभ्य वरुणो दृणीते ॥

ऋग्० ७-८६-३

हे वरुण सर्वश्रेष्ठ प्रभो ! मैं दर्शन करने का अभिलाषी होकर तुम्हारे वह पाप पूछता हूँ जिसके कारण मैं यहाँ बंधा हूँ। मैं जिज्ञासु दर्शनाभिलाषी होकर तेरे समीप आया हूँ, ज्ञानी पुरुषों से भी विविध प्रकार से पूछता रहा हूँ, पूज्य विज्ञागण सभी मुझे एक समान ही उपदेश करते रहे हैं कि निश्चय से यह वरुण सर्वश्रेष्ठ प्रभु ही तुम्हारे पररूप है।



## तुम्हें तक कैसे पहुँचू ?

किमाग आस वरुण ज्येष्ठ यत्तोतार जिघाससि सख्यम् ।

प्र तन्मे वोचो दूतम स्वधावोऽव त्वानेना नमसो तुर इयाम् ॥

ऋग्० ७-८६-४

हे वरुण सर्व-श्रेष्ठ प्रभो ! वह क्या अपराध है ? जिसके कारण अपने बड़े से बड़े उत्तम स्तुतिकर्ता, स्नेही मित्र को भी दण्ड सा देना चाहता है। हे दुर्लभ ! मुझे वह उपाय बतला जिससे निष्पाप होकर भक्ति-भाव से विनीत होकर अति-शीघ्र चल कर तुम्हें तक पहुँच जाऊँ।



## तुम्हारी रक्षा में भगवन् !

न तमहो न दुरित कुतश्चन नारात्तयस्तिर्त्स्निं द्रयाविन ।

विश्वा इदस्माद् ध्वरसो वि याधसे य सुगोपा रक्षसि ब्रह्मणस्पते ॥

ऋग्० २-२३-५

कस्तूरी न किसी ओर से शोक प्राप्त होते हैं, न पुत्र न कस्तूरी  
 रखते हैं, न बच्चा। सारे बहकने वालों को कस्तूरी से तुम परे  
 हटाते रहते हो, जिसके रक्षक बन कर हे प्रभो। तुम खरब रखा करते हो।



**हम आपके पुत्र हैं**

श्री १५ स वा: विवेक एतन्नेऽग्ने त्वाग्ने नमः । सक्तवा न स्वस्तये ॥  
 अथ १-१-२

प्रकारा देने वाले ज्ञान-स्वरूप प्रभो ! आप तो हमारे पिता हैं,  
 हम आपके पुत्र हैं, अपने पुत्र के लिए उत्तम ज्ञान दीजिए, जिससे  
 सब प्रकार के मुक्त प्राप्त हो सकें।



**बह कहाँ है ?**

श्री १५ कस्तूरी च हृद स्थितिः कस्य वर्त भवति वाच विदुः ।  
 कस्तूरी बड़े मनुष्य से बचने को कस्य हृद कस्य च होष ॥  
 अथ १-२१-४

यह सारे शोक शोकान्तर को बनाता है, बह इन्द्र कहाँ ?  
 और किन मन्त्रों किस मनुष्य के पास बिखरता है ? हे प्रभो ! तेरा  
 कौन एक कन्वाचकरी है ? तुम्हें अपनाने के लिए कौन सा मन्त्र  
 पूजा साधन है ? और बह कौन 'होता' है जो स्वीकार करने वाला है ?  
सबसे बड़ा दावा

श्री १५ शिवेनमिन्द्राहकरी शिवेति एव च इन्द्रविद्विदे ।  
 नदि त्वरन्मन्त्रकन व आप्तं कस्ते कस्य पितृ तव ॥ अथ १-२१-१८

क्योंकि ही मैं इन्द्र उपर महकथ रखा कामना थी कि कहीं से तुम्हें  
 प्राप्त हो जाए, परन्तु मेरे सबे पिता ! न आपसे बड़कर कोई दावा है,  
 न कोई दे सकथ है और न आपसे बड़कर किसीके पास तुम्हें है।

## । भरी दृष्टि

श्री३म् अम्य श्रेष्ठा सुभगम्य सह्यु देवस्य चित्रना मर्त्येषु ।

शुचिं घृतं न तप्तमध्वन्याया स्पर्शा देवस्य महनेव धेनोः ॥ श्रु० ४-१-६

तेरी तेज-भरी और कृपा-भरी कल्याणमयी दृष्टि परम उपकार देने वाली है, हम तेरी प्रजा इसी कृपा दृष्टि के इच्छुक हैं, कैसी है कृपा भरी दृष्टि, जैसे गौ का शुद्ध तपा हुआ घी, जैसा गाय के नों से निकला हुआ ताजा दूध—जिसके लिए हमारी सदा रुचि नी रहती है और जिसके तुल्य और कोई पदार्थ नहीं ।

## । अति समीप

श्री३म् स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अम्या उपसो व्युष्टौ ।

अव यत्त्वं नो वरुण रराणो वीहि मृतीकं मुहवो न एधि ॥

श्रु० ४—१—५ .

अति समीप होकर हे तेजस्विन् प्रभो ! तू हमारी रक्षा करता है, प्रभात-वेला की तरह तू पाप-नाश करने वाला है ! विशेषरूप से प्रकट होकर हमें पाप-निवारक वल प्रदान कर, हमें अपनी छत्र-छाया में सत्सङ्ग और मैत्री-भाव से जोड़े रख, हमारे लिए सुखकारी ज्ञान को प्रकाशित कर ।

## । तेग भक्ति-रस

श्री३म् प्र ते नाव न समने वचस्युव ब्रह्मणा यामि सग्नेषु दाशुषि ।

कुविन्नो अस्य वचसो निवोधिपदिन्द्रमुत्स न वसुन सिचामहे ॥

श्रु० २—१६—७

तेरे भक्ति-रस का पान करके हम तेरी नौका पर चढ़ बैठे हैं हमें अब वह शक्ति दे जिससे तुम्हें ही पुकारते रहें, और तुम्हें हमारी यह पुकार सुनते ही बनें । विजली के समान ऐश्वर्य के स्रोत प्रभो ! हमें तेरे इस स्रोत से भक्ति रस पीते २ कमी न थकें ।

## सदा तेरे रहेंगे

ज्यो१म् स्याम ते त इन्द्र वे त ज्यो१ वयस्त्व कर्षं कर्षन्तः ।  
सुभिक्षन्तं वं वाक्यम वैशासो रविं तसि वीरकन्तम् ॥  
श्रु १-११-१३

हमारी रक्षा करो मनाहर प्रभो ! तरी ही भक्ति में सदा उत्पन्न  
रहें, हम तेरे ही तो हैं और सदा तेरे रहेंगे येना येभय बीजिए, जिस  
से हमारा प्रभाव बढ़े और अति बलवान् और हमारे सहायक हों ।

## अपराध मष्ट बीजिए

ज्यो१म् नि मच्छूवाण रश्मामिष्यप श्रुष्यम ते वन्द्य अपरुत्तम ।  
मा तन्पुस्तकैनि वन्दते विभं ये मा मात्रा शार्ङ्गकः पुर ज्यो१ ॥  
श्रु १-१२-१२

हे ब्रह्म ! रस्सी कुल जाने से जैसे पापु को अर्धव्रत मिश्रती  
है, इसी प्रकार मुझसे अपराध को नष्ट बीजिए ताकि प्रभो—मैं  
आपके समीप होकर जगत हो सकूँ जैसे बल की नदी मष्ट नहीं  
होती बलही है और बलही ही रहती है, इसी तरह मेरी बुद्धि कभी  
मष्ट न हो । माता ! तेरा विरोध करने वाला कोई न हो ।

## पापों की रस्सी काटिए

ज्यो१म ज्यो१ ह म्बन्ध वन्द्य मिश्रं मरुत्तमात् ज्यो१यो१इतु मा रत्नाय ।  
रत्नेष वन्द्यदि ह्युत्तमो वदि त्वारे विमिष्यन्ते ॥  
श्रु १-१३-११

ब्रह्म मगवान् ! मुझ पर आपका अति अहम मह होग्य यदि  
आप मुझे अमय बना हें जैसे बलवा रस्सी के कुलने पर आनन्द  
मनाता है, जैसे मेरे पापों की रस्सी काट बीजिए, तभी मैं मुकी हो  
सकूँगा आपके बिना तो मैं अर्धव्रत तक भी नहीं ममका सकता ।

## म्हारे अन्दर लीन

ओ३म् उत स्वया तन्वा३ सं वदे तत् कदान्व १ न्तर्घटणे भुवानि ।

किं मे हव्यमदृष्टानो जुषेत कदा मृडीक सुमना अभि ख्यम् ॥

ऋ० ७-८६-०

प्रभो ! मैं मोचा करता हूँ कि मैं तुम्हारे अन्दर कब लीन हो  
ऊँगा ? तुम कब मेरी आराधना को स्वीकार करोगे ? कब मेरा  
ये इतना अच्छा हो जायगा कि मैं तुम्हारी कृपा का पात्र  
जाऊँगा ।

— ० —

## तार करो

ओ३म् य आपिर्नित्यो वक्ष्य प्रिय सन् त्वामार्गासि कृणवत् सखा तै ।

मा त एनस्वन्तो यद्भिन् भुजेम यन्धि प्सा विप्र स्तुवते वक्ष्यम् ॥

ऋ० ७-८८-६

आप ही तो मेरे सच्चे बान्धव हैं न भगवन् ! यह ठीक है मैंने  
के प्रति कितने ही अपराध किए हैं, परन्तु आप अब मुझे  
आप करके, अपनी शरण में स्वीकार करो, यही मेरी कामना है ।

## ही सहारा मुझे

ओ३म् आ त्वा रम्भ न जित्रयो ररम्भा शवसस्पते ।

उशसि त्वा सघस्य आ ॥

ऋ० ८-४१-२०

वृद्ध पुरुष को लाठी का सहारा होता है, परन्तु हे सब बलों के  
मिन् ! मेरे सहारे तो तुम्हीं हो । अब मैं तुम्हें अपने समीप आमने  
ने देखना देखना चाहता हूँ ।

— ० —

अब बहुत प्रतीक्षा न कराओ

ओ३म् त्वं विद्या ददिते केनचानि वाग्दनिर्धं च मुदा क्वमि ।  
अममिन्धो मन्त्रस्य वि त्वरीत्तन्मन्त्रात् त्वमिन्धो विद्या ॥

श्रु १०-१४-२

बह प्रकट और अप्रकट कोय तरे ही हो हैं, मेरे भगवन् ।  
किर मेरी इच्छा की पूर्ति में देर क्यों ? अब और प्रतीक्षा न कराओ ।  
तू ही आशा देने वाला है— हाँ तू ही देने वाला है, हाथ अब  
देर क्यों ?

—०—

हे बल भगवान् बहो !

ओ३म् क्वाक्युत्त मोक्षस्य सुखं मुमुक्षुः प्राप्नुते ।  
अमन्त्र क्वात्तः अमन्त्रस्य पामन्त्रं क्वात्तस्यैवैवै परिष्कम् ॥

श्रु १-११-११

बहो आनन्द मोह बने रहते हैं, बहो मन की सारी कामनाएँ  
पूरी हो जाती हैं, यहाँ मुझे भयूत क्या है भगवन् । बहो मुझे

—०—



## प्रतीक्षाकाल

श्रवीर हो उठने वाले भक्त एक बात याद रखें और वह यह कि भगवान् के दर्शनों में यदि देर हो रही है तो उसके लिए बहुत

कराने की आवश्यकता नहीं । कितने ही भक्त जब इस मागे पर लाना प्रारम्भ करते हैं तो कुछ काल के पश्चात् ऊब-से जाते हैं । वह कहना शुरू कर देते हैं—कुछ पल्ले नहीं पडा, कुछ भी तो प्राप्त नहीं हो रहा । पहले तो मन ही नहीं टिकता था, यही नाना प्रकार के नाच नचाता रहता था—अब इसका नाच कुछ कम हुआ है तो आगे कुछ भी तो दिखाई नहीं देता—ऐसा कहने वाले भक्त के लिए ही यह कहना है कि बबराइए नही, भगवान् अभी आपको इसी अवस्था में रखना उचित समझता है । इसी अवस्था में रहने से आपका कल्याण है और फिर यह अवस्था कोई ऐसी बुरी भी नहीं कि इसे त्याग दिया जाय । यह काल प्रतीक्षाकाल कहलाता है । निस्सन्देह, इसमें बहुत सन्तोष और वैये की आवश्यकता है, परन्तु एक सच्चा प्रेमी तो मिलाप की अपेक्षा इस प्रतीक्षा में अधिक आनन्द अनुभव करता है । उर्दू कवि ने क्या अच्छा कहा है—

वस्तु<sup>१</sup> में हिज्र<sup>२</sup> का गम, हिज्र में मिलने की खुशी ।

कौन कहता है जुदाई से विसाल अच्छा है ॥

क्यों जी ! जब श्रीराम ने वन को चले जाना था, तब राम घर ही

१—प्रिय-मिलन । २—वियोग ।



में वं और जब अन्तिम रात आ पहुँची थी तब अयोध्यावासी प्रसन्न  
 थे या जब राम अयोध्या से दूर बन में थे और वनवास की पहिली  
 दिन-प्रति-दिन समाप्त होवे जसी वा रही थी तब झुरा ये। पहली  
 अवस्था मिथ्याप की है, परन्तु लोग अभीर ये दूसरी अवस्था विद्योत्प  
 की है परन्तु लोग प्रसन्न हो रहे वं। यह एक सांसारिक प्रेम की  
 ज्यमा है। इसी प्रकार प्रसु-मिथ्या की प्रतीक्षा के समय को भी  
 आनन्ददायक समझना चाहिए। वही वह समय होता है, जब मरु  
 नित्य नय नाथ से अपने मन-मन्दिर को सात करता है, अनु-भाण  
 बहा कर मन-मन्दिर के फर्श को धोय है, उसके मार्ग पर अनु-जल  
 ही से सिद्धकाय करता है—“मिरे मिथ्याम आत्र तो अवरय आपणे—  
 तो विरोध बन से मन-मन्दिर की सजावट करनी होगी। दिन  
 , त्रि मर, ब्रह्मा-मेम और मरु के पुष्पों की माया किए मार्ग  
 होय। अभी ज्ञाप कि अभी आप, अभी द्वार मुझा कि  
 १० कितनी बार मरु कोई आइट पाकर, प्रकारा की ज्योति  
 कोई बिह पाकर बहुत प्रसन्न हो जाय है—‘वह आ गय, वह  
 पुन गवा’ परन्तु फिर प्रतीक्षा आरम्भ हो जाती है—और  
 इसी प्रकार कितनी रातें कितने दिन कितनी बरसातें कितनी सर्दियाँ  
 बीत जाती हैं—मरु बैठा है, इच्छा टिकवने हुए—उसे अब इसी  
 अवस्था में आनन्द आने लगता है—प्राण से सायं सायं स प्राण होता  
 है और मरु जमी प्रकार नित्य मन-मन्दिर को सजाता है, धोय है  
 और “किमी” के आन की प्रतीक्षा करता है। मरु इस प्रतीक्षा में  
 पबरय नहीं। वह तो दृढ़ता स नित्य-प्रति मन-मन्दिर में बैठकर  
 ज्ञान द्वार खटखटाता ही जसा जाता है और ज्योत्स है—  
 बैठे हैं ठरे वर<sup>१</sup> वे तो पुन कर के उठेये।  
 वा वस्त<sup>२</sup> ही मिथ्या वा नर के उठेये ॥

१ द्वार। २—मिथ्याप।

परन्तु इस मार्ग में मरने की आवश्यकता नहीं पडती, मिलाप हो ही जाता है—आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों, इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में । अतएव भक्त को यदि जल्दी मिलाप नहीं होता तो उसे धराना नहीं चाहिए, इस प्रतीक्षा-काल में श्रद्धा की मात्रा बढ़ाते ही चले जाना चाहिए, सशय को निकट नहीं आने देना चाहिए । इसके साथ ही एक दूसरी बात भी सन्मुख रखनी चाहिए, और वह यह कि अधीर हो उठने अथवा उत्र जाने से तो काम नहीं बना करता । जब किसान बीज बोता है तो क्या वह इसका फल तत्काल पा लेता है ? नहीं, उसे प्रतीक्षा करनी होती है, कितने ही दिन, कितने ही महीने वह प्रतीक्षा में व्यतीत करता है, कभी आकाश की ओर दृष्टि लगाए वर्षा की प्रार्थना करता है, कभी तूफान से बचने की प्रार्थना करता है और फिर भी प्रतीक्षा करता है । इसका एक बहुत अच्छा उदाहरण ऐपक टिटस फिलास्फर ने किया है जिम्का वर्णन श्री लाला दीवानचन्द्र जी एम०ए०, भूत० प्रधान दयानन्द कालेज कमेटी लाहौर ने अपनी पुस्तक 'जीवन-रहस्य' में किया है । ऐपक टिटस कहता है—“कोई बड़ा वस्तु तत्काल पूर्णता को नहीं पहुँचती, एक मामूली अंगूर के गुच्छे या अजीर के पकने के लिए भी समय की आवश्यकता होती है । यदि तुम मुझे कहो कि इसी समय तुम्हें अजीर दे दूँ तो मैं कहूँगा कि इसके लिए समय चाहिए । पहले वृक्ष पर फूल खिलने दो, तब फल लगेंगे और फिर पकेंगे । जब एक अजीर तत्काल पककर तैयार नहीं हो सकता तो मनुष्य के मन का फल तुम थोड़े से काल में कैसे प्राप्त कर सकते हो ।” मन के बनाने में जब आप लग गए हैं तो इसका फल शीघ्र ही मत चाहो—लगे रहो—समय बीतने दो, अच्छे किसान की तरह पूरी निगहबानी करो और तब फल भी मिल ही जाएगा ।

एक मन्त्रा सा बधा यदि यह चाहे कि मैं एक क्षण में युवा हो कर पहाड़ों को चलाय जाऊँ तो ऐसी कामना स्वर्ग ही आपणी शिष्टा को ११—२०—२५ वर्षों तक प्रतीक्षा करने पर बाधित होना ही पड़ेगा निरव-प्रति, अपने शरीर की रक्षा पालन्य करनी होगी युवा अवस्था तक पहुँचने के लिए सारे साधन प्रयत्न करने होंगे । पहली ब्रेजी का विद्यार्थी एक दम जो प० की डिग्री जैसे प्राप्त कर ले उसे तो पूरा प्रयत्न से विद्या प्राप्त करनी होगी कितने ही कष्ट उठाने होंगे कितने ही प्रसोमनों से अपने आपको बचाकर सरस्वती देवी ही की पूजा में लग रहना होगा आरुस्व, प्रमाद को छोड़कर विद्या प्रवृत्त करने में ही लक्ष्मी होना होगा तभी एक डिग्री देने के बाद योग्य हो सकेगा ।

धीरे धीरे रे मना धीरे लय कुछ होय ।

माली लीये ली क्या धनु कदवे कुछ होय ॥

—०—

## भक्ति के विघ्न

प्रभु-भक्ति की ओर अग्रसर होने वालों के मार्ग में विघ्न भी आकर उपस्थित हो जाया करते हैं। इन विघ्नों से घबराना नहीं चाहिए अपितु उन्हें दूर करने का भरसक प्रयत्न करना चाहिए। भक्ति के मार्ग के यात्रियों के लाभाय यहाँ कुछ विघ्नों तथा उनके दूर करने के उपायों का उल्लेख किया जाता है—

### पहला विघ्न—

सबसे बड़ा विघ्न शरीर से सम्बन्ध रखता है। यदि शरीर स्वस्थ नहीं तो मन भी स्वस्थ नहीं रह सकेगा। रोगी भला किस प्रकार से प्रभु-चिन्तन कर सकता है, वह तो पीड़ा तथा ज्वर ही की चिन्ता में अपनी घड़ियाँ व्यतीत कर देता है। मुझे उन हठ-योगियों के योग में सन्देह है जो सदा रोगी रहते हैं, और अपने शिष्यों के शरीर निर्वल करके उन्हें हतोत्साह करके निक्कमा बना देते हैं। यदि भक्ति अथवा योग-मार्ग पर चलना है तो सबसे पहली बात यह है कि शरीर को स्वस्थ बनाइए। स्वस्थ शरीर ही आपकी जीवन नय्या को पार ले जा सकेगा। इसके बिना न आसन टूट हो सकता है, न ध्यान में बैठे जा सकता है और न आत्म-चिन्तन हो सकता है। इसीलिए बाल्य-काल ही से शरीर को पुष्ट बनाने का विधान है, और युवावस्था ही में भक्ति तथा योग की ओर चलने का आदेश किया जाता है। भर्तृहरि जी ने कितना अच्छा कहा है—

कवचकल्पमिदं कठोरपुत्रं कल्पते इति वचः ।  
 यत्कैश्चित्कठोरैश्चिह्नैश्च कवचकौ यदुच्यते ॥  
 यत्कल्पयन्तं तन्मन्त्रं विदुः सर्वे मन्त्रो यदात् ॥  
 श्रेयसे मन्त्रे च कृत्वात्तं प्रयुज्यते शौर्यात् ॥

जबतक यह शरीर-रूपी घर खल्व है, जबतक बुद्ध्यात्मत्वा  
 दूर है, जबतक इन्द्रियों निबल नहीं हुईं, जबतक आयु बात नहीं  
 गई है, बुद्धिमान् मनुष्य को जबतक व्यस्मा का कल्याण करने के  
 लिए बड़ा भारी प्रयत्न करना चाहिए। मध्यम ज्ञान पर कुर्मी  
 लोदना स्वयं है।

शरीर स्वस्थ रखने का मुख्य उपाय यह है कि पौष्टिक परम्पु  
 सात्त्विक मोहन भक्षण पर किया जाय। न इन्मा अधिक लाभो कि  
 इन्म ही न हो और न इतना कम लाभो कि शरीर निर्बल होन लगे।  
 अपनी परिस्थिति के अनुसार निबल बना खीरिए और फिर इन  
 का पासन कीरिए—मोहन क अतिरिक्त मिषमिठ व्यायाम भी या  
 व्यसन शरीर का कल्प रहत है। दूध चिञ्चाना चर्बी पीसना, चरका  
 चक्यमा तथा घर का काम-काज भी शरीर को भीरोग खल्व है।  
 शरीर को स्वस्थ रखन का एक और साधन यह है कि कोई चिन्ता  
 मन को न लग्ये जो। प्रसन्न चित्त रहा करो। चिन्ता रोगों का पावनत  
 है, इन्ही पावनते में इनकी पासन्य होती है। किसी भी प्रकार की चिन्ता  
 शरीर के अन्दर एक ऐसी खल्ल पुबल मचा देती है जिससे पेट की  
 अन्तर्द्विया अपना काम नहीं कर सकती तब कुब्र भी इन्म नहीं  
 होश, और जाना रोग आकर बेच डाख सत है, सो चिन्ता से  
 बच रहिए।

दूसरा विम—

जो लोग अपने आपको कामू में नहीं रख सकत जिनकी  
 अर्सें बल्लस रहती हैं और नेत्रों द्वारा जो विच-पान करते रहते हैं,

उनका ब्रह्मचर्य स्थिर नहीं रह सकता, और भक्ति-मार्ग में ब्रह्मचर्य का नाश बहुत बड़ा विघ्न है। हठयोग-प्रदीपिका में कहा है—

मरणां विन्दुपातेन जीवनं विन्दुधारणात् ।

विन्दु ( वीर्य ) के पतन से मरण और विन्दु की रक्षा से जीवन होता है ।

जो गृहस्थी नियमपूर्वक सन्तान-उत्पत्ति करते हैं, वह भी ब्रह्मचारी कहलाते हैं, इसलिए गृहस्थ आश्रमी भी अपने ब्रह्मचर्य की रक्षा कर सकते हैं ।

**तीसरा विघ्न—**

भक्ति तथा योग-मार्ग पर चलते हुए तीसरा विघ्न यह आता है कि गायत्री अथवा ॐ का जाप करते-करते या प्राणायाम करते हुए अथवा ध्यान का अभ्यास करते हुए कितनी बार ऐसी भावना होने लगती है कि हम अपना समय व्यर्थ खो रहे हैं, मिलता मिलाता तो कुछ है नहीं, जब ऐसा सन्देह होने लगे तो समझो कि आपको सन्मार्ग से भ्रष्ट करने के लिए यह विघ्न आकर खड़ा हो गया है । सन्देह का पशु जब भी सामने दिखलाई दे, इसे तत्काल भगा दीजिए और लगे रहिए अपने अभ्यास में । सशय या सन्देह ऐसी शक्ति है जो श्रद्धा तथा विश्वास की हरी भरी खेती को जला देती है । यह आग न में भड़कने न दीजिए और लगातार इसे बुझाकर भक्ति-माता की गोद में बैठकर प्रतीक्षा कीजिए । यह प्रतीक्षा एक न एक दिन फल लाएगी ।

**चौथा विघ्न—**

चौथा विघ्न है भक्ति तथा अभ्यास के मार्ग पर चलते हुए 'तमागे' दिखलाई देना । मैंने कितने ही भक्तों को देखा है, जिनकी वृत्ति एकाम्र होने लगी और उन्हें कुछ ज्योति, कुछ नाद, कुछ चन्द्र सूर्य, कुछ और अलौकिक दृश्य दृष्टिगोचर होने लगे तो वह इन्हीं

पर सम्बोध करके बैठ गए। ध्यारे भक्त ! यह तो मार्ग के दोनों ओर लिखे हुए पृष्ठ हैं। इसमें मन को न अटकना आगे चल, आगे चल, इन लपारों में फंस गया तो भक्ति की असम्झी मञ्जिह पर पहुँच नहीं सकेगा। यह विज्ञ बड़ा विद्याकर्षक है, परन्तु हे तो विज्ञ ही अठपथ इसको भी छोड़ना चाहिए। इसका उपाय बही है कि यदि नाद सुनाई देता है तो देख रहे, आप आगे बढ़िए तब से चिपटे न रहिए।

पाँचवाँ विज्ञ—

भक्ति-मार्ग के कुछ बाकी एक और विज्ञ के शिखर देखे गए हैं, और वह है अहङ्कार तथा अभिमान—अर्थात् मैं बड़ा भक्त बन गया हूँ ऐसा भाव भी विज्ञ है। ऐसी भावना का जाने से दूसरों के दोष देखने की बात पड़ जाती है। वह यह कहता फिरता है कि सब लोग बहिष्ठ हो गए हैं, इन्हें बर्न-बर्न का कोई विचार ही नहीं रहा। भक्त के मन में ऐसे भावों का आ जाना बड़े अकर्षक का कारण बन जाता है। वह ऐसा विज्ञ है जिससे बर्न का अन्वेष मिट्टी में मिछ जाता है। अभिमान तथा पर-दोष-दर्शन से बचना चाहिए। इसके साथ सब्बारे मन्त्रों बैमनस्य और पशुपाठ के मन्त्रों से भी बच रहना आवश्यक है, वह भी विज्ञ चाहते हैं और भक्त को मठका देते हैं। यदि सर्वदा के लिए नहीं तो कुछ काल के लिए तो मम म माती क्षोम इन बाधों से पैदा हो जाता है। ऐसे बाधावरण में—जहाँ अशान्ति अधिक हो जाता भी विज्ञ वासता है, अठपथ मार्गों के हा-नू में रहने वालों के लिए आवश्यक है कि वह बर्न में कुछ समय ऐसे ज्ञान में बन्न जाँय जो तमरों के मन्त्रों से दूर और बैमनस्य के शोर से परे हो निरन्तर पश्यन्त हो। यदि सम्भव हो सके तो 'अज्ञातवास' किवा आप इससे वह विज्ञ शान्त होला है।

छठा विज्ञ—

दिलने ही मुबक-मुबकियों को देखा है जो वह विचार किए बैठे हैं

कि भक्ति केवल बूढ़ों के लिए है, जिन्हे कोई काम काज न हो, जो रिटायर्ड हो चुके हों और जिनका शरीर शिथिल हो गया हो, ऐसा विचार तो भयङ्कर विघ्न है। स्मरण रखिए वृद्धावस्था में कुछ न बन सकेगा। मुझे ऐसे वृद्ध पुरुषों तथा देवियों का पता है जो इच्छा रखते हुए भी भक्ति-मार्ग पर नहीं चल सकतीं। इसका कारण यह है कि उन्होंने युवा अवस्था में अपने आपको इधर नहीं झुकाया, युवा अवस्था ही में इस ओर प्रवृत्ति हो जाय तो बुढ़ापे में भी कुछ हो सकता है, अन्यथा नहीं। इसीलिए एक भक्त कहता है—

आयुर्नश्यति पश्यतां प्रतिदिन याति क्षय यौवनम् ।

प्रत्यायान्ति गता पुनर्न दिवसा कालो जगद्भक्तक ॥

लक्ष्मीस्तोयतरङ्गभङ्गचपला विद्युच्चल जीवितम् ।

तस्मान्मा शरणागत शरणद । त्व रक्ष रक्षायुगा ॥

आयु प्रति-दिन देखते-देखते नष्ट हो रही है, जवानी वीती जा रही है, गए हुए दिन लौट कर नहीं आते, काल जगत् को खा रहा है, लक्ष्मी जल के तरङ्ग की तरह चञ्चल है, और जीवन तो विजली की चमक के समान अस्थिर है, अतएव हे शरण देने वाले प्रभो ! मुझ शरणागत की तुम अभी रक्षा करो—यही भावना रखनी चाहिए कि जो समय मिला है इसमें सबसे पूर्व आत्म-चिन्तन, प्रभु-चिन्तन तथा भगवान् के निकट बैठने का अभ्यास किया जाय। आयु अभी बहुत है, वृद्धावस्था तो आने दो, फिर भक्ति भी कर लेंगे, ऐसा भाव भक्ति-मार्ग का बड़ा विघ्न है।

काल करै सो आज कर, आज करै सो अब ।

पल में परलै होयगी, फेरि करेगा कब ॥

विघ्न तो और भी कितने ही हैं परन्तु मुख्य विघ्नों का वर्णन कर दिया गया है। भक्त को चाहिए कि इनसे वचता हुआ भक्ति-मार्ग पर निस्सङ्कोच बढ़ता चला जाय।





## स्त्री जाति और भक्ति

जिस प्रकार का कोमल, स्वच्छ हृदय भक्ति के लिए आवश्यक है, वैसा स्त्रियों को विशेष रूपसे भगवान् ने दिया है। इस लिए भक्ति में सबसे बड़ा अधिकार स्त्रियों का है और “कार्डिनल न्यूमैन” ने तो यहाँ तक लिख दिया है—“यदि ईश्वर से मिलना चाहते हो स्त्री बन जाओ।” इसका भाव यह नहीं कि पुरुष किसी प्रकार से वास्तविक रूप में स्त्री बन जाय, अपितु भाव यह है कि जैसा स्त्री का हृदय है, वैसा ही अपना भी हृदय बना ले। स्त्री के हृदय में भक्ति का फूल बहुत शीघ्र खिलता और बढ़ता है। स्त्री का हृदय दूसरों को दुःख और कष्ट में देखकर द्रवित हो उठता है, उसमें सेवा का अंश बहुत अधिक होता है, उसमें श्रद्धा और विश्वास का अंश पराकाष्ठा को पहुँचा होता है, उनका स्वर मधुर और वाणी मीठी होती है और यह सारे १ गुण ऐसे हैं, जिनमें भक्ति का अंकुर खूब फलता फूलता है। केन-उपनिषद् में एक बड़ी सुन्दर कथा ब्रह्म को पाने के विषय में आती है। उससे भी यही ज्ञात होता है कि स्त्री ही ने आत्मा को ब्रह्म का पता दिया—कथा में कुछ और रहस्य भी खुल जाते हैं, इसलिए उसे सुन ही लेना चाहिए—  
ब्रह्मा ने अग्नि, वायु, आत्मा इत्यादि देवताओं का मान बढ़ाने के

१—जब इन गुणों का वर्णन मैं करता हूँ, तो मेरा प्रयोजन देवी से है, “चुड़ैल” से नहीं।

लिए उन्हें विजय प्राप्त करा ही। इस विजय को पाकर वह देवता  
 अभिमान में आ गए कि संसार में सब शक्ति पत्नी की है। यह जान-  
 कर ब्रह्म प्रकट हुआ और ब्रह्म के रूप में सामने आया। देवताओं ने  
 कहा यह कौन है ? तब अग्नि आगे बढ़ा। पथ ने पूछा तू कौन है,  
 और तेरी शक्ति क्या है ? अग्नि ने कहा—मैं जातवेदा अग्नि हूँ और  
 पृथिवी पर जो कुछ है, सबको जला सकता हूँ। पथ ने एक ठिगला  
 फेंक कर कहा, इस जलाधो। अग्नि अपने पूरे बल के साथ आगे  
 बढ़ा परन्तु ठिगले को जला न सका। असफल हो अग्नि झीट गया  
 और कहा मैं नहीं जान सका, यह ब्रह्म कौन है ? तब वायु को  
 कहा गया तुम पहचानो, यह ब्रह्म कौन है ? तब वायु दौड़ा गया और  
 पथ से कहने लगा कि मैं वायु हूँ और सब कुछ जला सकता हूँ। पथ  
 ने उसके सामने तिनका रखकर कहा, इसे जलाओ। वायु ने अपनी  
 पूरी शक्ति लगाई किन्तु वह उसे जला न सका। वायु ने भी झीट  
 कर कहा मैं इस ब्रह्म को जान नहीं सका। तब इन्द्र (आत्मा)  
 को आहवा हुई कि तुम आओ और पथ सगमो, यह ब्रह्म कौन है ?  
 इन्द्र आगे बढ़ा तो कहा देवता है कि वह ब्रह्म तुम हो गया है। अभी  
 वह आश्चर्य ही में कहा कि आकाश में बहुत शोभा-मुक्त, सुमहरी  
 भूषणों से अलंकृत उमा मय के एक स्त्री उसके सामने आई। उससे  
 इन्द्र ने पूछा यह ब्रह्म कौन है ? उमादेवी बोली कि वह ब्रह्म है और  
 उमाकी महिमा से तुम देवता महिमा माने हो।

हम कहा में ब्रह्म की पहचान एक स्त्री ने करवाई है। और बात है  
 यी सत्य। शिव का ब्रह्म उमा क सिवा और कौन हो सकता है। इस  
 कथा में यह बतलाया है कि जब देवता अग्नि, वायु वा मनुष्य के इन्द्रिय  
 ब्रह्म को सर्वथा नहीं जान सकते उसे केवल इन्द्र अर्थात् आत्मा ही  
 जान सकता है और वह भी उमादेवी अर्थात् बुद्धि की महाबल से।  
 बुद्धि को स्त्री के रूप में दिखाकर यहाँ स्त्री को बड़ा महत्व दे

दिया गया है, और स्त्रियाँ ऐसे महत्त्व की अधिकारिणी भी हैं। उनकी बुद्धि धर्म-कार्यों में, सूक्ष्म-विषयों को समझने में और भक्ति जैसे पवित्र-क्षेत्र में शीघ्र ही अति दूर निकल जाने में बहुत तीव्र होती है, परन्तु यह अत्यन्त शोक की बात है कि दम्भी-पुरुषों ने ऐसे पवित्र हृदयों का दुरुपयोग किया है और अपने गुरुदम और नीच वामनाश्रों के लिए ऐसे कोमल हृदयों में अन्ध-विश्वास की आग जलाकर उन्हें भस्म कर दिया है। इसलिए स्त्रियों को पूरी सावधानी के साथ ऐसे लोगों से बचना चाहिए। स्त्रियों को स्त्रियों द्वारा ही उपदेश मिले तो अच्छा है और स्वामी दयानन्द जी ने कलियुग के ढोंगी गुरुश्रों की लीलाए ही देखकर ऐसे गुरुदम के विरुद्ध आवाज़ उठाई थी। उसे सर्वदा सामने रखना चाहिए, परन्तु इसका प्रयोजन यह नहीं कि स्त्रियाँ प्रभु-भक्ति से वञ्चित रखी जाँय।

मनु ने जो यह कहा है—

नास्ति स्त्रीणा पृथग् यज्ञो न व्रत नाप्युपोषणम् ।

पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गं महीयते ॥

मनु० १—१२५ ।

स्त्रियों के लिए पृथक् यज्ञ व्रत-उपवास नहीं हैं, केवल एक पति की सेवा करने से वह परम-पद को प्राप्त हो देवताश्रों द्वारा पूजित होती हैं।

मनु-भगवान् की यह आज्ञा, आजकाल के धूर्त गुरुश्रों को देखें तो सर्वथा उपयुक्त प्रतीत होती है। बात है भी सच, जब स्त्रियों ने पति को छोड़कर किसी दूमरे की ही सेवा करनी है और उसी धवे और जञ्जाल में पड़े रहना है तो फिर उससे अच्छा है कि अपने पति ही की सेवा को जाय। पति-सेवा की महिमा बहुत बढ़ी है। गान्धारी ने तो यहाँ तक कह दिया था—

योगेन शक्ति प्रभवेचराणाम् । पातिव्रतेनापि कुम्भाङ्गनानाम् ॥

'पुरुषों को योग द्वारा शक्ति प्राप्त होती है और कुशाङ्गनाओं (देवियों) को अफन पतिव्रत धर्म से।'

वाल्मीकीय-रामायण (७-१८) में यह कहा है—

पतिर्विद्वेकतः कर्त्याः पतिर्वैष्णुः पतिर्जयः ।

प्रचैरपि शिवं तन्मारतुं शर्वं विरोक्तम् ॥

माटी के लिए पति ही देवता, पति ही बन्धु पति ही गुरु है। नित्य प्रार्थों से भी प्रिय-पति का प्रिय काम करना और जमी में प्रसन्न रहना। श्री का यह स्वभावित धर्म है।

यह सब मूल्य है और स्त्रियों को पतिव्रत-धर्म में आत्मदत्त करने के लिए यह उपदेश आशयक है, परन्तु पति-सेवा के साथ यह भी आवश्यक है कि आत्म-दर्शन के लिए भी कुछ प्रयत्न किया जाय। इसीलिए स्वामी इवानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश में जहाँ पुरुषों के लिए योगप्रत्यास किया है वहाँ स्त्रियों के लिए भी यह आजा ही है— 'श्री भी इसी प्रकार योगप्रत्यास करे'—और फिर जब आत्म-दर्शन की मामूली छिन्नो के पान मौजूद ही है वो ऐसी अवस्था में वह प्रभु-दर्शन से बञ्चित रहना शक्य नहीं है। यह सत्य है कि स्त्रियों को अपने पुरुष-वत् करने की आवश्यकता नहीं पुरुष कोई भी यह करे साथ ही होना अनिश्चय है। यह बड़ पुरुष ही नहीं हो सकता, जिसमें पति के साथ फली विराजमान न हो किन्तु शक्ति बड़ से पुरुष एक ऐसी भावना है, जो पुरुष को क्या, और स्त्री को क्या, एक धार्मिक और कर्त्वीय आत्मत्व को अनुभव करने का अधिकारी बनाती है, और स्वको प्राप्त करने का अधिकार सबको है। पुरुष और स्त्री को बाह्य और आन्तरिक को बुरा और बुरा को पुष्ट और सुख को, आत्मत्व और आस्था को धनी और निर्धन को, सबको वह अधिकार दिया गया है कि जब तुम्हें भगवान् का मन्दिर मिला है तो तुम

अपने सासारिक कर्त्तव्य करते हुए इस मन्दिर में आने के वास्तविक उद्देश्य को भी पूर्ण करो. और फिर स्त्री और पुरुष के अन्दर कौन है? वह न स्त्री है, न पुरुष—वह केवल आत्मा है। देखिए तो सही वेद-भगवान् इस विषय में कितनी सुन्दर बात कहता है—

त्व स्त्री त्व पुमानमि त्व कुमार उत वा कुमारी ।

त्व जीर्णो दृष्टेन वयमि त्व जातो भवमि विद्यतोमुख ॥

अथर्व० १०-८-२७ ॥

वेद जीवात्मा का वर्णन करता हुआ कहता है—“तू स्त्री और पुरुष भी है, तू कुमार और कुमारी भी है, तुम्हीं वृद्ध होकर लाठी से चलते हो, तुम जन्मते हुए अलग-अलग शक्तों वाले हो जाते हो।”

यह केवल बाहर का ढाँचा स्त्री-पुरुष दिखलाई देता है अन्यथा इस आत्मा का तो कोई लिंग नहीं।

स्त्रियों के लिए एक कठिनाई अश्वय है और वह यह कि उन्हें वधों के पालन-पोषण तथा गृह-कार्यों में बहुत समय देना पड़ता है, और उन्हें आत्म-दर्शन की माधना के लिए बहुत कम समय मिलता है, परन्तु जहाँ उनके लिए यह कठिनाई है, वहाँ उनको भगवान् ने दूसरे ऐसे गुण दे रखे हैं जो इम त्रुटि और कठिनाई को दूर कर देते हैं। पुरुष को गायत्री के जाप या ओ३म् के जाप से जो लाभ एक वर्ष में हो सकता है, वही लाभ देवियों को ६-७ मास में प्राप्त हो जाता है। इसलिए वधों के पालन-पोषण तथा गृह-कार्यों से न घबराना चाहिए, न घृणा करनी चाहिए, और न दिल तोड़ना चाहिए, अपितु इन कार्यों को तप का एक साधन समझ कर इन्हें करते हुए प्रभु-स्मरण, आत्म-दर्शन और भक्ति के लिए समय निकाल लेना चाहिए। प्रभु-भक्ति का क्षेत्र तय्यार करने के निमित्त वही विधि है, पहले ओ३म् और गायत्री-मन्त्र (अर्थ भली भाँति समझ) के जाप से आरम्भ करना चाहिए। उससे आगे वही विधि

है जो पहले सिखी जा चुकी है। हॉं ब्रिजों को आसन का ध्यान रखना चाहिए। इनके लिए दो ही आसन उपयोगी हैं—पद्मासन अथवा सुक-आसन। इन दोनों में से किसी एक का इतना अभ्यास कर लें कि एक ही आसन में साढ़े धीम पयटे लो बैठ सकें। दोर तक एक ही आसन में बैठने से टोंगे सोने लगेंगी इन्हें सोने हीजिय। यह सुभ हो जायगी इसकी भी चिन्ता न कीजिय। आगे बढ़कर शरीर भी सुभ हो जायगा, इसकी भी चिन्ता नहीं करनी और साधन को जारी ही रखना चाहिए।

पति-सेवा और दूसरे गृह-कार्य तो अवरपमेव करते हाई इनसे भागना नहीं। हॉं, इनके साथ भगवान् का स्मरण भी जारी रहना चाहिए। जिस प्रकार श्रीकृष्ण भगवान् ने कहा था कि "सब समय में निरन्तर भगवान् का स्मरण भी कर और बुद्ध मौ कर"। इसी प्रकार ब्रिजों को भी करना चाहिए। एक बहुत सुन्दर कथा एक कवि ने मंसारी लोगो के लिए सी है कि किस प्रकार से इस संसार में रहना चाहिए और वह यह है—

जुं विच<sup>१</sup> नैर<sup>२</sup> को दृष्टि रहे नि<sup>३</sup> नहिं ।

तैवे नर बग में रहे हरि को विचरे नहिं ॥

संसार के सारे काब करो पति सेवा भी-करो, परन्तु इस प्रकार को न मूजो कि उस परम-पति के दर्शन के लिए यह शरीर मिला है। एक प्रथम अक्षर देना आवश्यक है और वह यह कि पति ब्रिजों के लिए पति के अतिरिक्त और किसी को गुद बनाने की आज्ञा नहीं तो फिर ब्रिजों इस मार्ग का ज्ञान कहाँ से प्राप्त करें इसका अक्षर यह है कि जो देविर्षो मक्ति मार्ग की ओर अग्रसर होना चाहें, वह पहले अपने पतिपति को इस मार्ग पर चलने की प्रेरणा करें उनके पति इस मार्ग पर चलना सीखें, तब देविर्षो पति द्वारा ही इस

१—देवी । २—मानके ( कल का दर ) । ३—कन । ४—पति ।

मार्ग पर चलने लग जाँयगी। यदि पति नहीं है तब पिता, भ्राता, पुत्र या किसी और सगे सम्बन्धी को वह इस मार्ग पर आने की प्रेरणा करे, इससे जहाँ वह अपना कल्याण करेगी, वहाँ अपने प्यारे सम्बन्धियों के कल्याण का भी साधन बन जाँयगी, और यदि कोई भी सम्बन्धी उनके इस भक्ति मार्ग में सहायक नहीं बनता, तब भक्तिमार्ग की इच्छुक दूसरी देवियों के साथ मिल कर वह इस मार्ग पर चले।





## भक्तों के लिए उपयोगी बातें

उषा-काल से पहले ३ अथवा ४ बजे विस्तर से उठ जाना चाहिए ।

रात को सोते समय “तन्मे मन शिव सकल्पमस्तु” के सारे मन्त्र इस प्रकार से उच्चारण करने चाहिए कि अपने कानों को भी सुनाई दें ।

ओ३म् का जाप चलते फिरते भी करते रहना चाहिए ।

पेट को न बहुत भरना चाहिए, न बहुत खाली रखना चाहिए । बहुत थका देने वाला व्यायाम नहीं करना चाहिए, हल्का व्यायाम नित्य प्रति करना चाहिए—जिस दिन किसी विशेष कारण से व्यायाम न हो सके, उस दिन मानसिक व्यायाम ही कर लिया करें ।

अभ्यास, ध्यान, भजन तथा जाप नियत समय पर पूरे नियम और सावधानी के साथ करने चाहिए ।

अपने घर में कोई एक स्थान नियत कर लो और प्रयत्न करो कि भजन के लिए नित्य वहीं बैठा करो ।

संसार अनित्य है, मनुष्य अन्न की तरह पकता है और अन्न की तरह उत्पन्न होता है, मरना मनुष्य के लिए नियत है, यह अनहोनी बात नहीं । ( कठ )

परमात्मा की प्राप्ति का उपाय यह है कि वाणी आदि सारी

इन्द्रियों को मन में रोके, मन को बुद्धि में रोके बुद्धि या ज्ञान को महान् आत्मा ( महान्-वस्तु ) में रोके और उन महान् को शान्त आत्मा में रोके । ( कठ )

१०. मूर्ख बाहर और सांसारिक कामनाओं के पीछे जाते हैं और वह वस्तु की धर्मों में पड़ते हैं, और धीरे धीरे पुरुष अप्रवृत्त को जान कर यहाँ अखिर वस्तुओं को कामना नहीं करते । ( कठ )
११. जो अकेला सारे संसार की हर प्रकार की कामनाओं को पूरा करता है, उसको जो पुरुष अपने आत्मा में स्थिर देखता है, उसको मदा ही शान्ति होती है ।
१२. ब्रह्म-जोक उनके लिए है जिनके तप और ब्रह्मचर्य है और जिनमें सचाई विचार है—जिनमें कोई कृत्स्नता नहीं और कोई छद्म नहीं । ( मम )
१३. अज्ञान मनुष्य है, आत्मा हीर है और ब्रह्म उसका सच कहलाता है । इसको पूरा साधनान पुरुष वीम सकता है । ( मुण्डक )
१४. जो सबको जानता है और सबको समझता है, जिसकी वह प्रवृत्ति इस भूमि पर महिमा है, वह आत्मा दिव्य ब्रह्मपुर ( हृदय के आन्तर ) में रहता है । ( मुण्डक )
१५. सत्य तप वास्तविक ज्ञान और ब्रह्मचर्य से यह आत्मा सदा पाया जाता है । ( मुण्डक )
१६. जिस प्रकार की कामनाओं का विचार करता हुआ मनुष्य मरता है, वही कामनाओं के अनुसार वह जन्म लेता है । ( मुण्डक )
१७. भय की कमी मिलना न करे, वह ब्रत है, भय को परे न हटाए, उसका अमाहर न करे वह श्रुत है, भय का बहुत सम्पन्न करे वह श्रुत है, अतिथि को अपने पर से कमी वाहिस न करे वह श्रुत है । ( वैश्वीय )

पुरुष को चाहिए कि "ओम्" इस अक्षर की उपासना करे।  
इम ओम् ही से सारे वेद प्रवृत्त होते हैं। ( छान्दोग्य )

यह मेरा आत्मा है, हृदय के अन्दर, धान से छोटा है, जौ से छोटा है, मरसों से छोटा है, सिमाक (सवाँक) से छोटा है, सवाँक के चावल से भी छोटा है।

यह मेरा आत्मा है, हृदय के अन्दर, पृथिवी से बड़ा है, अन्तरिक्ष से बड़ा है, द्यौ से बड़ा है, इन सब लोकों से बड़ा है। सारे कर्म, सारी कामनाएँ, सारे सुगन्ध और सारे रस उसके हैं। वह इस सबको घेरे हुए है, वह कभी बोलता नहीं, वह बेपरवाह है। यह मेरा आत्मा है हृदय के अन्दर, यह ब्रह्म है, इसको मैं यहाँ से मर कर प्राप्त करूँ, ऐसा जिसका पूरा विश्वास है और कोई सन्देह नहीं, वह उसे पा लेता है। ( छान्दोग्य )

एक सन्दूक है यह ससार, जिसका निचला तल पृथिवी है, ऊपर का ढकना द्यौ है और पेट अन्तरिक्ष है और मनुष्यों के कर्म, साधन और फलों का खजाना इसमें भरा है। (छान्दोग्य)

जैसे शिकारी के वागे से दृढ़ बधा हुआ कोई पक्षी दिशा-दिशा में उड़कर—फड़ फड़ाकर—और कहीं आश्रय न पाकर उसी स्थान का आश्रय लेता है, जहाँ वह बधा हुआ है, ठीक उसी तरह यह मन दिशा-दिशा में घूम कर और कहीं आश्रय न पाकर प्राण का ही सहारा लेता है, क्योंकि यह मन प्राण से बधा हुआ है। ( छान्दोग्य ) इसीलिए मन को काबू करने के लिए प्राण को काबू करना आवश्यक है।

फूटे घड़े में भरे हुए जल के समान मनुष्य की आयु प्रतिक्षण क्षीण हो रही है, वृद्धावस्था सिंहनी के समान समीप में ही गर्जना कर रही है, मृत्यु सिर पर सदा नाच रही है, लक्ष्मी छाया के समान चञ्चल है, जीवन जलतरङ्ग के समान क्षण-

मंशुर है—भक्षण को समय है, इसी में भगवान् का मजन कर लो।

२३ आत्म-शास्त्र और प्रमु-प्रम वा सबसे बड़ा और मन्त्र राज-मार्ग केवल ब्रह्मचर्य है। विन्दु के अग्य स मृत्यु और इसके रक्ष्य स अमृत मिलता है।

२४ अपने नेत्रों को ब्रह्मरूप होने दो, त्रिजों की ओर गहरी दृष्टि से न देखो वह ब्रह्मचारी के मन में शोभ उत्पन्न कर रही है। ( इवानन्द )

२५ मङ्गल सरसु विधीयताम् ( सधम-पत्रक ) सम्भो का सङ्ग करो।

२६ अहं भक्त्या हि मुक्त्याव सग्य । सन्त प्रसन्न रूप परम सुख के कारक होते हैं। ( महामारु )

२७ मई कर्षेभि शृणुयाम—भगवान्-सम्बन्धी बातों-अपनों से सुनो। ( अम्बेर )

२८ मई जो अपि आठव मन—हे प्रभो ! हमारे मन को भली-भाँती की ओर प्रेरित कीजिए। ( सायदेह )

२९ मऊ के लिए कर्मों का त्याग नहीं किन्तु आचमन कर्मों का स्वाम आचरनक है।

३ परमात्मा में पूर्ण अनुरक्ति का प्रबोधन वह है कि संसार के प्रति निरन्तर प्रेम और उत्तम विद्या सेवा हो।

३१ इम अनित्य संसार में आकर अनित्य जीवन चारण कर अनित्य, मुक्त-वेद्य में मूढकर आत्म-कथाय को नहीं मूढना चाहिए।

३२ सत्पुरुषों का सङ्ग मऊ के लिए आचरनक है, वह बहुत से संशय मिटाकर विद्या बड़ाता और मन को निश्चल करने में बड़ा सहायक होता है।

३३ पुर्वम मनुष्य विद्या हो ती मी उत्तम सङ्ग जोड़ देना

चाहिए। मणि से भूषित साँप क्या भयङ्कर नहीं होता ?

भक्त के लिए अत्यन्त आवश्यक है कि वह अपने हृदय में भगवान् के लिए प्रबल पिपासा को जगा दे, जब इस पिपासा से भक्त वेक़रार हो उठता है तो फिर भगवान् की ज्योति सहज में प्राप्त हो जाती है।

श्री भगवान् का आह्वान करने वाले भक्त। यह क्या कह रहा है, पवित्रता के उस स्रोत को मैले मन में कैसे ला सकेगा। इसे पहले शुद्ध कर ले—कुछ तो कूड़ा-कर्कट हटा ले, फिर उसे भी बुला लेना। भक्त ने कहा, मैं इसीलिए तो उसे बुलाता हूँ कि मैं हार गया हूँ, मुझसे मैला मन साफ़ नहीं होता, अममर्थ हो चुका हूँ, भगवान् अब कृपा कर दो न।

किसी को पीड़ा दिए बिना, किसी को मताये बिना, किसी की हानि किए बिना, अपने वाहुवल अथवा मस्तिष्क बल से जो धन वा अन्न कमाया जाता है, वही मन को शुद्ध रख सकता है। वाणी में मिठास नहीं है और सत्य बोल रहा है, तो भी ठीक नहीं, सत्य बोलो परन्तु ऐसा, जो कठवा न हो—दूसरों के हृदय चीर डालने वाला न हो।

मन, वचन और काया तीनों से दूसरों का उपकार करते रहना ही सतों—भक्तों का सहज स्वभाव हुआ करता है।

सन्त अर्च्छे भक्त-जनों का मङ्ग बडी कठिनाई से पुण्य रहने पर ही प्राप्त होता है। मनुष्य का अर्च्छा या बुरा होना सगति पर निर्भर है। जल की बूँद वही है किन्तु जलते हुए तवे पर पडने से उसका नाम तक नहीं रहता, वही बूँद कमल के पत्ते पर पडने से मोती सरीसौ दिग्गई देती है। ममुद्र की सीप में जब वह गिरती है तो मोती बन जाती है, यह सब सद्ग का ही फल है।

- ४० जिस पुरुष ने विषय के होष और वीर्य-रक्षण के गुण जाने हैं, वह विषयासक्त कभी नहीं होता और उनका वीर्य विचारान्ति का ईषमवत् है अर्थात् उसीमें व्यय हो जाता है। (सत्यार्थप्रकार)
- ४१ श्रुति से ईश्वर में प्रीति, उसके गुण-कर्म-स्वभाव से अपने गुण कर्म स्वभाव का सुधारना प्राप्तिना से निरभिमानता अर्थात् और सहाय मित्रता अपासना से परब्रह्म से मेल और अन्तः साक्षात्कार होता है—और जो केवल भौंड के समान परमेश्वर के गुण-कीचन करता जाता और अपना चरित्र नहीं सुधारता, उसका श्रुति करना व्यर्थ है। (सत्यार्थप्रकार)
- ४२ एक बार यदि मन भगवत्-रस का स्वाद पा सके तो फिर कामना पर महज ही विषय प्राप्त की जा सकती है।
- ४३ पुरुष यदि काम को बार-बार अस्वीकार करे, त्याग करे उसके बोल में अन्तिक भी सार्ध न दे तो प्रकृति से वह सम्पूर्ण रूप से अलग हो जाता है और आत्मविक्रम ही संवम की साधना है।
- ४४ मनुष्य का वह मन्दर आन वासा स्थूल शरीर ही नहीं है, अपितु इसके अतिरिक्त जीव का एक और बेश है जिसे सूक्ष्म शरीर या श्मिग शरीर कहा जाता है। इसमें पाँच ज्ञानन्द्रिय और पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच प्राण मन और बुद्धि—यह सत्रह उपदान हैं। इस सूक्ष्म-शरीर ही में वासनामय संस्कार चिपटे रहते हैं, और इन्हीं के फलस्वरूप जीव पर-बरा होकर कर्म करने को बाध्य होता है—इन्हीं वासनाओं को नष्ट करना मनु का कर्तव्य है।
- ४५ वासनाओं को नष्ट करने का प्रथम साधन यह है कि मन में वैराग्य उत्पन्न करो परन्तु अपने वैराग्य को किसी पर प्रगट मत करो भीतर ही भीतर वैराग्य की बेल को बढ़ाते जाओ यदि बुध्वाप वैराग्य को बढ़ाते जाओगे तो वासनाएँ अपने आप भागने लगेंगी।

नम्रवाणी, विनय और प्रेम का प्रदर्शन चाहे जितना भी करो घर में रह रहे हो तो भाइयों से, नौकरों से, सबसे नम्रवाणी का प्रयोग करो ।

अपने जीवन को सादा बनाओ, बहुत थोड़ी वस्तुओं से निर्वाह करो, जितनी आवश्यकताएँ और इच्छाएँ कम करते चले जाओगे, उतना ही अधिक परमात्मा के निकट होते चले जाओगे। यदि भगवान् की कृपा के पात्र बनने की अभिलाषा है तो भगवान् जिस स्थिति में रहें, उसी में सन्तुष्ट रहने की वान डालो। तुम्हारे शत्रु सावधान है, तुम्हें, नष्ट कर देने का मौका ढूँढ़ रहे हैं। तुम्हें सुन्दर, मन लुभावने तथा हृदय-आकर्षक दृश्य और कामनाओं में फमा कर तुम्हें निर्बल कर देंगे और फिर तुम्हें लूट लेंगे। ओ युवक ! अपने जवानी के बल से इन काम, क्रोध लोभ, मोह और अहंकार रूपी शत्रुओं पर विजय पा ले, नहीं तो वृद्ध-अवस्था में यह बुरी तरह तुम्हें सताएंगे और आनन्द का सारा कोष लूट ले जाँयंगे।

५० जब जीव मन, वाणी और कर्म से किसी का अनिष्ट नहीं करता, काम, क्रोध, ईर्ष्या, असूया अदि मनोमलों को त्याग देता है, तब वह भगवान् का प्यारा घन जाता है।

५१ धीरे-धीरे बहिर्मुखता त्याग करके अन्तर्मुखता का सम्पादन करना ही माघना तथा भक्ति का सच्चा स्वरूप है।

५२ मन के चार प्रकार हैं—(१) धम से विमुख जीव का मन मुर्दा है। (२) पापी का मन रोगी है। (३) लोभी तथा स्वार्थी का मन आलसी है। और (४) भजन-साधन में तत्पर भक्त का मन स्वस्थ है।

५३ पहले तो मनुष्य जन्म पाना ही दुर्लभ है, वह मिल गया तो मानो समार-सागर से पार होने के लिए नौका मिल गई, परन्तु इस नौका को खेने वाला कोई गुरु मिले और भक्ति की अनुकूल



बायु मिले, तभी यह पार जा सकेगी। इसलिये बौध्दराज अनुमती गुह और भक्ति की शरय्य हो। कही ऐसा न हो कि नौका पकी-पकी बेकर हो जाय।

३४. कोई भी काम करने लगे तो यह याद रखो कि ईश्वर तुम्हें देख रहा है यदि ऐसा न्याय रखोगे तो कोई भी छोटा कम तुम नहीं करने पाओगे।

३५. सत्य और धर्म की रक्षा दृढ़ता से होती है, जिसे प्राणों का मोह है, वह कभी धर्म का पालन कर ही नहीं सकता।

३६. इसे मत भूलो कि किसी विषय में पुस्तका बहुत सहज है किन्तु फिर उससे छुटकारा पाना अत्यन्त कठिन है। सम्मल जाओ, मूढ कर भी केवल ब्रह्म-मात्र के लिये भी किसी विषय में मत फसो।

३७. जिस प्रकार बायु की सहायता पाकर आग शुष्क लकड़-समूह को जला देती है, इसी प्रकार विद्वानों में वासनाओं पाप-वृत्तियों को जलाने के लिये भगवान् की भक्ति समर्थ होती है।

३८. विद्या का स्वाद जब मूढ को घेर लेता है और वह अधिक जाने लगता है तो भक्ति रीति लगती है, मूढ भक्ति से दूर चला जाता है।

३९. विपत्ति कष्ट-कष्टों और दुःख में धैर्यवान् रहने वाला और उन्हें प्रसन्नता से सहकर फिर उभर जाने वाला मनुष्य अपने आपको प्रसन्नता का पात्र बना लेता है।

४०. प्राणियों के देह-वारय्य करने की सफलता इमीमें है कि निदग्ध निर्धन और शोचरहित होकर भगवान् के गुणगान और भक्ति में तत्पर रहें।

४१. संत-समाजम निरुत्सवें ही सुखम है। महारा मुन्दरदाम जी ने क्या ही सुन्दर कहा है—

कत मिहै दुनि मात मिले कत मय मिले दुकती दुक्यार्ई।

राज मिलै गज-भाज मिलै सब साज मिलै मन-वञ्छित पाई ॥

लोक मिलै सुरलोक मिलै विधिलोक मिलै बडकुरठहुँ जाई ।

सुन्दर और मिलै सब ही सुख, दुर्लभ सतसमागम भाई ॥

तीक्ष्ण-धारा वाली नदियों में जिस प्रकार कोई वृण शान्त नहीं रहता, बहकर इधर-उधर हो जाता है । ठीक उमी प्रकार ब्रह्म-चर्यहीन मनुष्य के चञ्चल हृदय में कोई साधन-विवेक नहीं टिकता, इधर-उधर वह जाता है ।

जैसे शीत से आतुर पुरुष का अग्नि के पास जाने से शीत निवृत्त हो जाता है, वैसे परमेश्वर के समीप होने से सब दोष—दुःख छूटकर परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के सदृश जीवात्मा के गुण-कर्म-स्वभाव पवित्र हो जाते हैं । (सत्यार्थप्रकाश)

परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना उपामना करने से आत्मा का बल इतना बढ़ेगा कि पर्वत के समान दुःख प्राप्त होने पर भी वह नहीं घबराएगा । ( सत्यार्थप्रकाश )

विपत्ति यथार्थ में विपत्ति नहीं है, सम्पत्ति यथार्थ में सम्पत्ति नहीं । भगवान् का विस्मरण होना ही विपत्ति है और उनका स्मरण बना रहे, यही सबसे बड़ी सम्पत्ति है—

विपदो नैव विपद सम्पदो नैव सम्पद ।

विपद्विस्मरण विष्णोः सपन्नारायणस्मृति ॥

विपद सन्तु न शश्वत् तत्र तत्र जगद्गुरो ।

भवतो दर्शन यत्स्यादपुनर्मददर्शनम् ॥

हे जगद्गुरो ! हमपर सदा विपत्तिया ही आती रहें, क्योंकि आपके दर्शन विपत्ति में ही होते हैं ।

मुँह के चमड़े सिकुड़ गए सिर के बाल ज्वेत हो गए, सब अङ्ग ढीले हो गए, पर एक वृष्णा ही तरुणा हुई जा रही है ।  
( भवृ हरि )

६८. आरा नाम की एक नदी है—इसमें मनारव-रूपी जल बरा है। इसमें वृष्णा-रूपी लहरें हैं। राग ही इसमें मगर है। नान्य प्रकार के लक-बिठक पड़ी हैं। यह नदी प्रवाह में धैर्य-रूपी पेड़ को तोड़ देने वाली है। मोह ही इसके कठिन भंडार हैं पीर बिम्बा-रूपी इसके ढंभ किनारे हैं—केवल शुद्ध मनकरील पोगी ही इसके पार जाकर आनन्द करत हैं। ( मरु हरि )

६९. भोग जैसे ही बल्लभ हैं, जैसे ढंभी पानी की लहर। प्राण कस्य मर में नष्ट होने वाला हैं। प्रियाओं में रखने वाली जवानी के सुख की स्फूर्ति हो चार दिन भी है। इसलिये हे शानीपंडितो ! इस अधिस्त संसार को निस्तार समझ, सोकानुग्रह के विषय में मन को अमुरक्त कर अज्ञ-भाग करने का प्रयत्न क्यों नहीं करते ? ( मरु हरि )

७०. मनुष्यों की आयु सी वर्ष की परिमित है—इसका आधा भाग तो रात में ही बीत जाता है। अतः काशी का आधा झुक पन और बुढ़ाप में बसा जाता है। काशी रोग व्याधि, विषोद, दुःख सेवा व्याधि में बीतता है। यह जीवन अस्त-तरङ्ग के सम्मन बल्लभ है, इसमें प्राणियों को सुख कहाँ ? ( मरु हरि )

७१. जब तक शरीर नीरोग और स्वस्थ है, बुढ़ापा बुर है, इन्द्रियों को शक्ति न्यून नहीं हुई है और आयु भी क्षीण नहीं है, तभी तक अपने कल्याण के लिए परिश्रम को बढ़ा पन्न कर लेना चाहिए। नहीं तो घर में आग लगने पर कुआ लोढ़ने की बात कैसी है ? ( मरु हरि )

७२. सूख जाहे कमल को चित्तना ही व्यप दे कमल का सुँह उसके सामने सदा लुखा रहेगा, तुम जाहे मेरे कष्टों का निवारण न करो मेरा हृदय तो तुम्हारी ही बया से इषीमूत होग्य। यदि माय किस्ती कारख से बसे को अपनी गोद से छुटार भी देती

है तो भी वज्रा उसी में अपनी लौ लगाये रहता है। यदि पति अपनी पतिव्रता स्त्री का सबके सामने तिरस्कार भी करे तो भी वह उसका पगित्याग नहीं करती—इसी प्रकार भगवान् । मैं तुम्हें कैसे छोड़ सकता हूँ । ( भक्त कलशेखर )

जिनका चित्त अखिल-सौन्दर्य के भण्डार परमात्मा ( सुभव सुपेशस ) में लगता है, वे क्या मनुष्य के क्षणभंगुर और घृणित रूप पर आमक हो सकते हैं । ( देवी )

ईश्वर ने हम लोगों को जो कुछ भी दिया है, वह बटोर कर रखने के लिए नहीं, प्रत्युत योग्य पात्रों को देने के लिए है ।  
( चरथुल्ल )

जो लोगों के अत्याचारों से व्यथित नहीं होते, वही महापुरुष हैं । ( मसूर )

६ पश्चात्ताप करो, पश्चात्ताप । आज तक जो कुछ भी हो चुका उसपर पश्चात्ताप करो । आँसू बहाकर मन का मैल दूर करो और भगवान् से कहो—महाराज । आज से अपने चरणों में स्थान दो, और कुछ दो या न दो परन्तु अपनी भक्ति का भाव अवश्य दो—पश्चात्ताप का रुदन मनुष्य के हृदय में अलौकिक शान्ति ले आता है ।

७७ जब लोग मुझे पागल कहेंगे और मुझे अपने काम का न समझेंगे—जब ससारी लोग मुझे परे हटा देंगे, तभी मेरे मन में वास्तविक, तत्त्व का प्रकाश होगा ।

७८ मुल-दुःख की स्थिति कर्मानुसार होने से उनका अनुभव सबके लिये अनिवार्य है, इसलिए दुःख का अनुभव करने समय भी भगवान् को याद रखो और दुःखकाल में भी उनकी निन्दा न करो, आप्तु भगवान् का धन्यवाद करो कि उन्होंने आपके मन के मैल को दूर करने का उपाय किया है—दुःख को तपस्या

और प्रायश्चित्त का रूप समझे ।

७६. समस्त कर्मों को छोड़ दो—व्यय की बाठबीय से क्या काम—  
मगवान् में ही अपने चित्त को लगाओ । ( मन्वाचार्य )  
७७. मगवान् ने तुम्हें जिहा कर्मों की ? एक मल इन्द्र यह उत्तर  
देता है—

विद्यो यो त्व ही मती अपे हरि च काम ।

नही तो अर विद्यविने मुख में लखे न काम ॥

७८. बह से रोच बने हुए अज्ञ को जाने वाले अज्ञ पुरुष सब पापों  
से छूटते हैं और जो अज्ञ-बोग अपने शरीर-गोपण के लिए  
ही पकते हैं, तो पाप को ही व्यते हैं । ( गीता )

७९. जो पुरुष सम्पूर्ण अमनाश्यों को त्याग कर ममता-रहित और  
अहंकर-रहित, लृहा-रहित हुआ व्यवहार करता है, वह शान्ति  
को प्राप्त होता है । ( गीता )

८०. मष्ट हो गए हैं सब पाप जिनके और ज्ञान-प्राप्ति से निवृत्त  
हो गया है संशय जिनका और सम्पूर्ण प्राणियों के हित में ही  
रति जिनकी यथायुक्त हुआ है मगवान् के ध्यान में चित्त जिनका  
ऐसे ब्रह्मवेत्ता पुरुष शान्त परब्रह्म को प्राप्त होते हैं । ( गीता )

८१. न धन चाहिए न सम्पत्ति न बाटिका चाहिए, न हुकान—मार्ग,  
मगवान् की भक्ति के लिए केवल हृदय चाहिए, हृदय—और  
हृदय ही वह, जो प्रेम पवित्रता तथा पुरुषार्थ से मना हुआ हो ।

८२. जीवात्मा इन्द्रियों के बरा में होकर निश्चय बड़े-बड़े शोषों को प्राप्त  
होता है और अब इन्द्रियों को अपने बरा में करता है तभी  
सिद्धि को प्राप्त होता है । ( मनु )

८३. जैसे अग्नि में लपाने से मुख्यादि वातुओं का मल नष्ट होकर  
शुद्ध होती है, जैसे प्राणायाम करने से भ्रम आदि इन्द्रियों के  
शोष क्षीय होकर निर्मल हो जाते हैं । ( मनु )

यह निश्चय है कि जैसे अग्नि में ईन्धन और घी हालने से वृद्धि होती है, वैसे ही कामों के उपभोग से काम शान्त नहीं होता, किन्तु बढ़ता ही जाता है, इसलिए मनुष्य को विषयामक्त न होना चाहिए। ( सत्यार्थ प्रकाश )

किया हुआ अधर्म निष्फल कभी नहीं होता, परन्तु जिस समय अधर्म करता है, उसी समय फल भी नहीं होता, इसलिए अज्ञानी लोग अधर्म से नहीं डरते, तथापि निश्चय जानो कि अधर्माचरण धीरे-धीरे तुम्हारे सुख के मूलों को काटता चला जाता है। ( मनु )

८६ जो प्राप्त के अयोग्य की कभी इच्छा न करे, नष्ट हुए पदार्थ पर शोक न करे, आपत्काल में मोह को प्राप्त न हो अर्थात् व्याकुल न हो, वही बुद्धिमान् पण्डित है। (मनु०)

९० जब तक ससार हमारे मन में बसा हुआ है, तब तक भगवान् दूर प्रतीत होते हैं। जैसे ही ससार हटा और मन में भगवान् का प्रकाश आया। बुझे शाह ने एक बार प्याज की पनीरी लगाते हुए कहा था—

मुल्लया रव दा की पाना ।

एवरो पुटना ते एषर लना ॥

६१ प्रभु का विस्मरण ही मृत्यु है, प्रभु का स्मरण ही जीवन है—  
'यस्य च्छाया अमृत यस्य मृत्यु' ।

६२ घट-शुद्धि के लिए 'ओम्' नाम का जाप बहुत आवश्यक है, अनुभवी-जनों ने बताया है कि नाम जप के साथ यदि ॐ का ध्यान भी किया जाय तो बहुत शीघ्र सिद्धि होती है।

६३ नित्य धर्म का सचय करते चले जाओ, धर्म ही की सहायता से बड़े-बड़े दुस्तर दुःखसागर को जीव तर जाता है। (मनु०)

६४ जो मिथ्याभाषण करता है, वह सब चोरी आदि पापों के करने

बयासा है । (मनु)

६५. प्रभु-प्रेमी के बासी तथा नेत्र आदि से प्रेम की बपा होती रहती है, बमब्य मार्ग प्रेम से पूरु होता है ।

६६ जो बेहपारी है, वह दुःख-सुख की प्राप्ति से पृथक् नहीं रह सकता इसलिये दुःख-सुख का बहुत ध्यान न रख । (ब्रह्मयोग्य)

६७ मज्जली का बल में पपीहे का मेघ में बकोर का बन्धुमा में जैसा प्रेम है वैसा ही हमारा प्रेम प्रभु में हो एक पल भी ठमके बिना बैन न गिह्य शान्ति न गिह्य ।

६८. "भगवान् के प्रति किसका प्रेम सबा है ?" वह एक प्रश्न का बिस पर हो प्रभु-प्रेमियों में वातपीठ होने लगी—

एक ने कहा—भगवान् के भेजे हुए दुःख को जो बिरता से सहन नहीं कर सकता, वह सबा प्रेमी नहीं ।

दूसरे ने कहा—किन्तु इसमें अभिमान को गन्ध आती है ।

एक ने कहा—वह सबा प्रेमी नहीं जो दुःख के लिये भगवान् को भयबान् न दे ।

दूसरा—इससे मी बौर बंवा बर्जा है ।

एक ने कहा—वह सबा प्रेमी नहीं जो दुःख की प्रतीति न बरे ।

दूसरा—यह सबसे बचन नहीं है—सबसे बबकोटि का प्रेम यह है, जिसमें मनुष्य भगवान् में येमा बिन रहे कि बस दुःख की बबर ही न हो ।

## भक्तों के भजन

[ १ ]

हे जग स्वामी प्रभु तू भेंट पर्यं क्या मैं तेरी ।  
माल नहीं मेरे सम्पन्न नहीं, जिमको कौं मैं मेरी ।  
इस जग में हम ऐसे विचरें, जोगी करे ज्यों फेरी ।  
धन जन यौवन अपना माने, मृग्य भूला भारी ।  
तुम्हें धिन और महार्शि न भेरा, देव लिया मैं धिचारी ।  
यह तन यह मन होवे न अपना, है सब माल तुम्हारा ।  
जब पाछे तब ही तू लेवे, नहीं कुछ जोर हमारा ।  
तुमरे द्वि दर का भिग्यारी मैं स्वामी, लाज तुम्हें है मेरी ।  
चरण शरण निज अर्पण करके, देओ भक्ति धिन देरी ।

[ २ ]

पितु मात सहायक स्वामी सदा, तुम ही एक नाथ हमारे हो ।  
जिनके कछु और आधार नहीं, तिनके तुम ही रखवारे हो ।  
प्रतिपाल करो भिगरे जग को, अतिशय करुणा कर धारे हो ।  
महाराज ! महा महिमा तुम्हारी, ममके विगले बुधवारे हो ।  
शुभ शान्तिनिकेतन प्रेम-निधे । मन-मन्दिर के सजियारे हो ॥

१—श्री महात्मा हसराम जी का प्यारा भजन, जिसे वह प्रति दिन प्रातः  
गाया करते थे, और जब आप मृत्यु शय्या पर पड़े थे, तब भी यही भजन  
सुना करते थे ।



वह जीवन के तुम जीवन हो, इन प्राम्थन के तुम प्यार हो ।  
 तुम सौ प्रभु पाद प्रताप हरि, केहि के अब और सहारे हो ॥

[ ३ ]

हे स्वामिन् । आपका हम को सदा आचार हो ।  
 आपके मर्को स ही भरपूर यह परिवार हो ॥  
 झोड़ देवें काम को और झोड़ फो मह मोह को ।  
 शुद्ध और निर्मल हमारा सर्वश आचार हो ॥  
 प्रेम से मित्र मित्र के सारे गीत गावें आपके ।  
 दिव्य में बहता आपका ही प्रेम पाठवार हो ॥  
 जब पिछ जब जब पिता हम जब तुम्हारी गा रहे ।  
 रात दिन धर में हमारे आप की जयधर हो ॥  
 बन धार पर में जो समी कृष्ण आप का ही है दिपा ॥  
 हमके द्विजे प्रभु आपको जन्मबाद सौ-सौ बार हो ॥  
 पास अपने हो न बन तो कस्तुरी कुड परबाह नही ।  
 आप की मक्ति से ही बनवान यह परिवार हो ।

[ ४ ]

आज अली' बिहरो विव पायो, मिट गये सकल कसेरा री ॥  
 सागर लख नही नह नारे, प्राग नगर मिरि अनन सारे ।  
 एक न जोरो हू ड फिरी में, मटकी देश-विदेश री ॥  
 मैं बिरहिन फेरी बौरानी सीकत डोडी कपट क्यामी ।  
 बेर बेर डोगल बहकाई, करि कोरे उपदेश री ॥  
 भीत गई सारी तबप्याई पर प्यारे की बाह न फाई ।  
 जोजत जोजत मो दुखिया के धीरे हो गये केरा री ॥  
 बोधि एक अचानक आबो बिन मेरी मरतार कस्ताबो ।  
 सो शंकर साबो हितकारी भ्रम-रुम पकट विमेश री ।

१—सही । २—एवं ।

[ ५ ]

नैया कैसे उतरे पार ? ॥ टेक ॥

वार न दीखे पार न सूके आन पडी मझवार ॥  
 विजली चमके वाइन गरजे, उलटी चलत बयार ।  
 गहरी नदिया नाव पुरानी, केवट अति मतवार ॥  
 द्रुपद सुनावत मुने न कोई, मेरी कूक पुकार ।  
 वेगवती दूस्तर जल धार, उठी तरङ्ग अपार ॥  
 जिन हाथों में सब जग थाया, सो प्रभु हाथ पमार ।  
 'अमीचन्द' को तारो नौका, डूब रही मझार ॥

[ ६ ]

प कर तेरा प्रेम प्याला हा जाऊँ मतवाला ॥  
 प्रेम की बाती प्रेम का दीपक प्रेम की होवे ज्वाला ।  
 मन-मन्दिर में जगमग करके हो जावे उजियाला ।  
 मेरे घर के अन्दर बहता होवे प्रेम का नाला ।  
 जब जब प्याल लगे उसमें से भर कर पी लूँ प्याला ॥  
 वो दे प्रेम-वारि से अब तू मन मेरा मटियाला ।  
 तेरे प्रेम के रङ्ग में रङ्ग कर हो जाऊँ रगियाला ॥  
 प्रेम-अश्रु से सिंचित प्रेम का वाग लगे हरियाला ।  
 प्रेम-प्रसून लगे हों उसमें उनकी गूथूँ माला ॥

[ ७ ]

हमने ली है प्रभु इक तुम्हारी शरण,  
 हे पिता और कोई हमारा नहीं ।  
 पतित-पावन अब आसरा दो हमें,  
 आसरा और कोई हमारा नहीं ॥  
 न बुद्धि, न भक्ति, न विद्या का बल,

हरप प पना पाप बमा का मल ।  
 तुम्हारी क्या का है एक आमग,  
 तुमन किम किम बोखामी बभारा मदी ॥  
 यह बिमल है मरी पि । मान सो  
 अमारी क दुग्गे को पहचान सो ।  
 तुम्ही मबके अज्ञान को जान सो  
 हाथ किमी और को पमार नही ॥

[ ८ ]

गये दोनों अज्ञान नजर न गुजर, तरा शान का कोई बरार न मिला ।  
 तरी हर जगह बली निराशी पवन तेरा भव किमी को मगर न मिला ॥  
 तेरी बचा अर्ध की खानों पे है तेरा शार खमान क अती में है ।  
 मगर अँगों से देगा वो परदा नहीं कही तू नमिला तेरा घर न मिला ॥  
 कोई मिलने का तरे भिरान भी है, कोई रहने का तरे मकान भी है ।  
 तुम्हे देगा इपर दो इपर न मिला तुम्हे हूँ हा बबर दो छपर न मिला ॥  
 कही बने मबास बगब नही किमी और पे हूँ तुम्हे नाथ नही ।  
 कोई तुम सा घरी बनबाब नहा तेरे दर के सिवा कोई दर न मिला ॥

[ ९ ]

मम मन हित की बात मुनाई ।  
 नित विपरीत की सोच करे तू यह पछे वह काई ।  
 यह झंझ है यह खान मुनू यह सुगन्ध छिपटाई ॥  
 कभी न साचा मूरख तू ने काम किसी के भाई ।  
 इन हाथों से किसी दुली का बुझ दो बर् मिटाई ॥  
 से हपाय एष साज सँबाई बुझ और विनहाई ।  
 और नही दो अँगू तक ही पौज किसी क भाई ॥  
 होर मरे सोचे बन मूला जग के पैर बधाई ।  
 दुक विचार अपनी बमकी पर मैं क्यों कर इटाई ॥

जीते जी कर ले कुछ करनी वारहि वार बनाऊँ ।  
 कही न गोवे अथ वीते नित कैसे फेर बुलाऊँ ॥  
 वित भाँगे सत्र रत्न पावे वह तुम को राह बतारूँ ।  
 प्रभु-जन वह कल्प-वृक्ष है जिमसे सत्र फल पाऊँ ॥

[ १० ]

पिता जी तुम पतित अधाग्न द्वार ।

दीन-शरण कगाल के स्वामी, दुःख के मोचन द्वार ॥ १ ॥  
 हम जग माया-जाल भ्रमण में मूके न मार असार ॥ २ ॥  
 सत्य-ज्ञान विन अन्ध सम डोले, त्रें अमत्य आचार ॥ ३ ॥  
 पाप-प्रवाह भयकर जल में, दृवत हैं मक्तधार ॥ ४ ॥  
 तुमरी न्या विन को नमर्थ है, करे दीनन को पार ॥ ५ ॥

— ० —

[ ११ ]

देक—शरण पड़ी हूँ मैं तेरी दयामय, शरण पड़ी हूँ मैं तेरी दयामय ॥  
 जगन सुखों में फन कर स्वामी, तुझ से लिया चित्त फेरी—दयामय०  
 पाप-ताप ने दग्ध किया मन, दुर्मति ने लिया घेरी—दया० ॥  
 वही जात हूँ भवनागर में, पकड़ लेखो भुजा मेरी—दया० ।  
 अनेक कुकर्म गिनो मत मेरे, क्षमा-दृष्टि देखो फेरी—दया० ॥  
 सत्सग ज्ञान मधुर सुख अपना, करो प्रकाश एक घेरी—दया० ।  
 पाप-मलीन हृदय में मेरे, ज्योति प्रकाशे तेरी—दया० ॥  
 प्रेम-त्तरग उठे मन-अन्दर, नाथ विनय सुनो मेरी—दया० ।

[ १२ ]

जय जय पिता परम आनन्द दाता ।  
 जगदादिकारण मुक्ति प्रदाता ॥

अज्ञान धीर अज्ञा र विगलत है तरे ।

गृहि वा गृहा नृ धना मंडला ॥

गुरुम गो गुरुम नृ दे गुरु इत्या ।

दिशिमये पर प्रज्ञाने माता मयात् ॥

अज्ञा गुरु नियम मरे अज्ञात् ११ ।

अज्ञा वैदिक नियम भाषं चौरात् ॥

अज्ञात् मरे भव अज्ञात् १२ ।

अज्ञात् मरे अज्ञात् चौरात् विनात् ॥

अज्ञात् मरे है अज्ञात् चौरात् १३ ।

अज्ञात् मरे है अज्ञात् चौरात् १४ ॥

अज्ञात् मरे अज्ञात् चौरात् १५ ॥

अज्ञात् मरे अज्ञात् चौरात् १६ ॥



# नित्य स्वाध्याय के लिए उपाय

१ **दीपक (हिंदी)**—मनुष्य-जीवन को सफल विद्यालय और विचारशील क्षेत्रों में भी प्रतिक्रियाशील बनाने अपने विचार और अनुभव से बहुत ही सामर्थ्य प्रदान किया है। मूल्य १)

२ **मनः और प्राचीन समाजवाद**—इस ग्रंथ के हर पहलुओं पर पूर्ण विचार किया गया आरम्भिक शिक्षा से लेकर पूर्ण व्यवस्था तक का विचार करने पर पुस्तक में ब्रह्मपाद महात्मा काठकण स्वामी जी ने किया है। ग्रंथ में यह मत दर्शाया गया है कि प्राचीन वर्णमन-व्यवस्था ही सही समाजवाद है। मूल्य १)

३ **व्यापार-मार्ग**—इस पुस्तक में ३१० वर्ष-पूर्व का बड़ा सुन्दर व्यापार का गद्य है। पृथ्वी के लिए श्री स्वामी वेदानन्द जी का बड़ा उपयोगी ग्रन्थ है। सारा वर्ष प्रति दिन व्याप इससे अवगत-यान कर सकते हैं। इसे पढ़िए और स्वयं व्यापारिक तथा सामाजिक शक्ति प्राप्त कीजिए। मूल्य ४)

४ **वैदिक मन्त्र-स्तोत्र**—बहु १०८ पुष्पों की एक सुन्दर पुष्पमाला है, जिसमें समस्त वैदिक मन्त्रों की मीरपुरी ने किया है और भाषाशुद्धता की मधुर भाषा की रत्नबीर जी ने लिखी है। मूल्य १॥

इन पुस्तकों के अविरल सभा ने समाजों के लिए—

(१) रजिस्टर व्याप व्यवस्था

(२) रजिस्टर सामिक व्यवस्था—बड़ी सुन्दर विचार और व्यवस्था कायदा बना कर बसवाए हुए हैं इनमें मूल्य व्यापकता और प्रति रजिस्टर सभा ने रखा हुआ है, क्योंकि कायदा का मिलना बहुत कठिन है।

दिल्ली में अधिष्ठाता महात्मा इंटरराज साहिल-विमाना  
व्यापार-वैदिक सभा साहौर।

श्री जिन शासन पुष्पोद्यन पुष्पमाला का द्वा पुष्प ।

# 卐 धर्म वाणी 卐

संपादक—

श्री श्री पूज्य जैनाचार्य प्रधानाचार्य आगमाचार्य  
बाल ब्रह्मचारी पूज्य श्री १००८ श्री  
सोहनलाल जिस्सूरीश्वर के शुशिर्य  
प्रवर्तक पदालकृत वैरग्यमूर्ति पंडित  
एतनमुनि श्री ताराचन्द्रजी  
महाराज पजाबी ।

प्रकाशक—

विक्रम संवत् २००६  
इसवी मन १६५२

मूल्य  
=)

वीर मन्वत् २४७६  
पूज्य श्री सोहनलाल  
स्वर्गवास वर्ष १७



आनुपूर्वी पढ़ने वाली का आनुपूर्वी पढ़ने समय विशेष  
पाठ नियमों पर विशेष ध्यान रखना चाहिये ।

- (१) आनुपूर्वी सांसारिक साधन के लिये मटी पढ़ना चाहिये ।
- (२) आनुपूर्वी परामर्श पृथक शांति बिना पढ़ना चाहिये ।
- (३) आनुपूर्वी अगुस्तुखान पर मटी पढ़ना चाहिये ।
- (४) आनुपूर्वी मीन से पढ़नी चाहिये ।
- (५) आनुपूर्वी विवेक पृथक पढ़नी चाहिये ।

अनुपूर्वी गुण जो है इन्द्र मसी तपका कत्र इत्य ।

संवेद मत्त आस्था सागर निर्मल मन कवा मन्कार ।

गुणमन धरी विवेक स का प्रायो इत्यद्य पद ।

आगम भाषा में कहा अरिहंत पांच भा सागर क वाच मिट ।

अगुम कम के मिष्टाद्यो, मंत्र महा है मन्कार ।

का अर्थ गुण भाव स पावे अक्षय द्वार ॥

प्रथम कोष्टक

( १ )

एमो अरिहताण १	एमो सिद्धाण २	एमो आयरियाणं ३	एमो उवज्जायाण ४	एमो लोए मव्वसाहू ण ५
एमो आयरियाण ३	एमो उवज्जायाण ४	एमो लोए मव्वसाहू ण ५	एमो अरिहताण १	एमो सिद्धाण २
एमो लोए मव्वसाहू ण ५	एमो अरिहताण १	एमो सिद्धाण २	एमो आयरियाण ३	एमो उवज्जायाण ४
एमो सिद्धाण २	एमो आयरियाण ३	एमो उवज्जायाण ४	एमो लोए मव्वसाहू ण ५	एमो अरिहताण १
एमो उवज्जायाण ४	एमो लोए मव्वसाहू ण ५	एमो अरिहताण १	एमो सिद्धाण २	एमा आयरियाण ३

द्वितीय कोष्टक

एमो उवज्जायाण ४	एमो लोए मव्वसाहू ण ५	एमो अरिहताण १	एमो सिद्धाणं २	एमो आयरियाणं ३
एमो अरिहताण १	एमो सिद्धाण २	एमो आयरियाण ३	एमो उवज्जायाण ४	एमा लोए मव्वसाहू ण ५
एमो आयरियाण ३	एमो उवज्जायाण ४	एमो लोए मव्वसाहू ण ५	एमो अरिहताणं १	एमो सिद्धाण २
एमो लोए मव्वसाहू ण ५	एमो अरिहताण १	एमो सिद्धाणं २	एमो आयरियाण ३	एमा उवज्जायाण ४
एमो सिद्धाण २	एमो आयरियाण ३	एमो उवज्जायाण ४	एमो लोए मव्वसाहू ण ५	एमो अरिहताण १

खमो सिद्धार्थ १	खमो आपरियाण ३	खमो वचम्भवाण ४	खमो वोप सम्भसाहू यां ५	खमो परिहताण १
खमो वोप सम्भसाहू यां ५	खमो परिहताण १	खमो सिद्धार्थ १	खमो आपरियाण ३	खमो वचम्भवाण ४
खमो आपरियाण ३	खमो वचम्भवाण ४	खमो वोप सम्भसाहू यां ५	खमो परिहताण १	खमो सिद्धार्थ १
खमो परिहताण १	खमो सिद्धार्थ १	खमो आपरियाण ३	खमो वचम्भवाण ४	खमो वोप सम्भसाहू यां ५
खमो वचम्भवाण ४	खमो वोप सम्भसाहू यां ५	खमो परिहताण १	खमो सिद्धार्थ १	खमो आपरियाण ३

## चतुर्थ कोटक

खमो वोप सम्भसाहू यां ५	खमो परिहताण १	खमो सिद्धार्थ १	खमो आपरियाण ३	खमो वचम्भवाण ४
खमो आपरियाण ३	खमो वचम्भवाण ४	खमो वोप सम्भसाहू यां ५	खमो परिहताण १	खमो सिद्धार्थ १
खमो परिहताण १	खमो सिद्धार्थ १	खमो आपरियाण ३	खमो वचम्भवाण ४	खमो वोप सम्भसाहू यां ५
खमो वचम्भवाण ४	खमो वोप सम्भसाहू यां ५	खमो परिहताण १	खमो सिद्धार्थ १	खमो आपरियाण ३
खमो सिद्धार्थ १	खमो आपरियाण ३	खमो वचम्भवाण ४	खमो वोप सम्भसाहू यां ५	खमो परिहताण १

पाचवां कोष्टक

( ३ )

एमो आयरियाण ३	एमो उवज्मायाण ४	एमो लोए सव्वसाहू णं ५	एमो अरिहंताणं १	एमो सिद्धाणं २
एमो लोए सव्वसाहू णं ५	एमो अरिहंताणं १	एमो सिद्धाण २	एमो आयरियाण ३	एमो उवज्मायाण ४
एमो सिद्धाण २	एमो आयरियाणं ३	एमो उवज्मायाणं ४	एमो लोए सव्वसाहू ण ५	एमो अरिहताण १
एमो उवज्मायाण ४	एमो लोए सव्वसाहू ण ५	एमो अरिहताणं १	एमो सिद्धाण २	एमो आयरियाणं ३
एमो अरिहताणं १	एमो सिद्धाण २	एमो आयरियाणं ३	एमो उवज्मायाणं ४	एमो लोए सव्वसाहू णं ५

छठा कोष्टक

एमो लोए सव्वसाहू णं ५	एमो उवज्मायाण ४	एमो आयरियाण ३	एमो सिद्धाणं २	एमो अरिहंताण १
एमो सिद्धाण २	एमो अरिहंताण १	एमो लोए सव्वसाहू णं ५	एमो उवज्मायाण ४	एमो आयरियाण ३
एमो उवज्मायाण ४	एमो आयरियाणं ३	एमो सिद्धाण २	एमो अरिहंताणं १	एमो लोए सव्वसाहू ण ५
एमो अरिहताणं १	एमो लोए सव्वसाहू णं ५	एमो उवज्मायाण ४	एमो आयरियाणं ३	एमो सिद्धाण २
एमो आयरियाण ३	एमो सिद्धाण २	एमो अरिहताण १	एमो लोए सव्वसाहू ण ५	एमो उवज्मायाण ४



नौवा कोष्टक

( १५ )

एगो उवज्जायाण ४	एगो आयरियाणं -३	एगो सिद्धाणं २	एगो अरिहंताण १	एगो लोए सव्वसाहू ण ५
एगो सिद्धाणं २	एगो अरिहंताण १	एगो लोए सव्वसाहू णं ५	एगो उवज्जायाण ४	एगो आयरियाण -३
एगो लोए सव्वसाहू ण ५	एगो उवज्जायाण ४	एगो आयरियाण ३	एगो सिद्धाणं २	एगो अरिहंताणं १
एगो आयरियाणं -३	एगो सिद्धाण २	एगो अरिहंताण ५	एगो लोए सव्वसाहू ण ५	एगो उवज्जायाण ४
एगो अरिहंताण १	एगो लोए सव्वसाहू ण ५	एगो उवज्जायाण ४	एगो आयरियाण ३	एगो सिद्धाणं -२

दशवा कोष्टक

एगो सिद्धाणं २	एगो अरिहंताण १	एगो लोए सव्वसाहू णं ५	एगो उवज्जायाण ४	एगो आयरियाण ३
एगो लोए सव्वसाहू णं ५	एगो उवज्जायाण ४	एगो आयरियाण ३	एगो सिद्धाणं २	एगो अरिहंताण १
एगो उवज्जायाण ४	एगो आयरियाण ३	एगो सिद्धाणं २	एगो अरिहंताण १	एगो लोए सव्वसाहू णं ५
एगो अरिहंताणं १	एगो लोए सव्वसाहू ण ५	एगो उवज्जायाण ४	एगो आयरियाणं ३	एगो सिद्धाणं २
एगो आयरियाणं ३	एगो सिद्धाणं २	एगो अरिहंताण १	एगो लोए सव्वसाहू ण ५	एगो उवज्जायाणं ४

# नित्य स्वाध्याय के लि

१ बीषक (हिंदी)—मनुष्य-  
विज्ञान और विचाररहीस ज्ञानक भी प्रि।  
अपने विचार और अनुभव से बहुत ।  
व्यापक सिद्ध हैं । मूल्य १)

२ नवान और प्राचीन समा  
चार के हर पहलुओं पर पूर्ण विचा  
आरम्भिक इतिहास से लेकर पूरा ८  
पुस्तक में पूरा-पार महात्मा मारामण  
बह मत वर्णना गया है कि प्रा  
समाजवाद है । मूल्य १)

३ स्वाध्याय-मार्ग—इ  
अ बड़ा सुन्दर व्याख्या की १  
रामी वेदान्त की अ बड़ा उपवा  
आप इससे अमृत-पान कर मरने  
शारीरिक तथा सामाजिक शक्ति

४ वैदिक मन्त्र-स्तोत्र—  
पुण्यमात्र है, जिसका समग्र प  
भाषा-व्याख की मधुर भाषा श्री १  
इन पुस्तकों के अतिरिक्त  
(१) रजिस्टर भाषा व्या  
(२) रजिस्टर मामिन्त्र  
अप्या कायक छपा कर बनवा  
प्रति रजिस्टर ममा ने क्या १  
कठिन है ।

केशोराम अधिष्ठाता  
आर्य प्रा

तेहरवा कोष्टक

( ७ )

एगमो अरिहताण १	एगमो उवज्जायाण ४	एगमो सिद्धाण २	एगमो लोप सव्वसाहू णं ५	एगमो आयरियाणं ३
एगमो लोप सव्वसाहू ण ५	एगमो आयरियाण ३	एगमो अरिहताण १	एगमो उवज्जायाण ४	एगमो सिद्धाणं २
एगमो उवज्जायाण ४	एगमो सिद्धाणं २	एगमो लोप सव्वसाहू णं ५	एगमो आयरियाण ३	एगमो अरिहताण १
एगमो आयरियाण ३	एगमो अरिहताणं १	एगमो उवज्जायाण ४	एगमो सिद्धाण २	एगमो लोप सव्वसाहू ण ५
एगमो सिद्धाण २	एगमो लोप सव्वसाहू ण ५	एगमो आयरियाण ३	एगमो अरिहताण १	एगमो उवज्जायाण ४

चोहदवा कोष्टक

एगमो लोप सव्वसाहू णं ५	एगमो आयरियाण ३	एगमो अरिहताणं १	एगमो उवज्जायाण ४	एगमो सिद्धाण २
एगमो उवज्जायाण ४	एगमो सिद्धाण २	एगमो लोप सव्वसाहू ण ५	एगमो आयरियाणं ३	एगमो अरिहताणं १
एगमो आयरियाणं ३	एगमो अरिहताण १	एगमो उवज्जायाण ४	एगमो सिद्धाणं २	एगमो लोप सव्वसाहू णं ५
एगमो सिद्धाणं २	एगमो लोप सव्वसाहू णं ५	एगमो आयरियाण ३	एगमो अरिहताणं १	एगमो उवज्जायाण ४
एगमो अरिहताण १	एगमो उवज्जायाणं ४	एगमो सिद्धाणं २	एगमो लोप सव्वसाहू णं ५	एगमो आयरियाणं ३



खयो बबग्म्यायां ४	खमो सिद्धायां १	खमो लोप सञ्चसाहू यां २	खमो आपरिवायां ३	खमो अरिहतायां १
खमो आपरिवायां ३	खमो अरिहतायां १	खमो बबग्म्यायां ४	खमो सिद्धायां १	खमो लोप सञ्चसाहू यां २
खमो सिद्धायां १	खमो लोप सञ्चसाहू यां २	खमो आपरिवायां ३	खमो अरिहतायां १	खमो बबग्म्यायां ४
खमो अरिहतायां १	खमो बबग्म्यायां ४	खमो सिद्धायां १	खमो लोप सञ्चसाहू यां २	खमो आपरिवायां ३
खमो लोप सञ्चसाहू यां २	खमो आपरिवायां ३	खमो अरिहतायां १	खमो बबग्म्यायां ४	खमो सिद्धायां १

## घोड़वा कोष्ठक

खमो लोप सञ्चसाहू यां २	खमो सिद्धायां १	खमो बबग्म्यायां ४	खमो अरिहतायां १	खमो आपरिवायां ३
खमो बबग्म्यायां ४	खमो अरिहतायां १	खमो आपरिवायां ३	खमो लोप सञ्चसाहू यां २	खमो सिद्धायां १
खमो आपरिवायां ३	खमो लोप सञ्चसाहू यां २	खमो सिद्धायां १	खमो बबग्म्यायां ४	खमो अरिहतायां १
खमो सिद्धायां १	खमो बबग्म्यायां ४	खमो अरिहतायां १	खमो आपरिवायां ३	खमो लोप सञ्चसाहू यां २
खमो अरिहतायां १	खमो आपरिवायां ३	खमो लोप सञ्चसाहू यां २	खमो सिद्धायां १	खमो बबग्म्यायां ४

सतरहवा कोष्टक

( ६ )

एगो उवज्जायाण ४	एगो अरिहताणं १	एगो आयरियाणं ३	एगो लोए सव्वसाहू ण ५	एगो सिद्धाणं २
एगो आयरियाण ३	एगो लोए सव्वसाहू ण ५	एगो सिद्धाणं २	एगो उवज्जायाणं ४	एगो अरिहताण १
एगो सिद्धाणं २	एगो उवज्जायाणं ४	एगो अरिहताण १	एगो आयरियाण ३	एगो लोए सव्वसाहू ण ५
एगो अरिहताणं १	एगो आयरियाणं ३	एगो लोए सव्वसाहू ण ५	एगो सिद्धाण २	एगो उवज्जायाण ४
एगो लोए सव्वसाहू णं ५	एगो सिद्धाणं २	एगो उवज्जायाण ४	एगो अरिहताणं १	एगो आयरियाणं ३

अठ्ठ हरवा कोष्टक

एगो आयरियाण ३	एगो लोए सव्वसाहू ण ५	एगो सिद्धाण २	एगो उवज्जायाणं ४	एगो अरिहताण १
एगो सिद्धाण २	एगो उवज्जायाण ४	एगो अरिहताण १	एगो आयरियाणं ३	एगो लोए सव्वसाहू ण ५
एगो अरिहताणं १	एगो आयरियाणं ३	एगो लोए सव्वसाहू ण ५	एगो सिद्धाणं २	एगो उवज्जायाणं ४
एगो लोए सव्वसाहू णं ५	एगो सिद्धाणं २	एगो उवज्जायाणं ४	एगो अरिहताण १	एगो आयरियाण ३
एगो उवज्जायाणं ४	एगो अरिहताण १	एगो आयरियाणं ३	एगो लोए सव्वसाहू ण ५	एगो सिद्धाण २



॥ श्री मञ्जैनाचार्य्य श्री सोहणलाल जित्मूरिश्वर भ्यो नमः ॥

## ❀ धर्म--वाणी ❀

(१)-महामंत्र परमेष्ठी—

णमो अरिहंताण, णमो सिद्धाणं ।  
णमो आयरियाण, णमो उवज्झायाण ॥  
णमो लोए सव्व साहूण ।  
एसो पंचणमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो ।  
मगलाण च सव्वेसिं, पढम हवइ मगल ॥

(२)-गुरु वदना मंत्रः—

विक्सुत्तो आयाहिणं, पयाहिण, करेमि वंदामि ।  
नमसामि, सक्कारेमि, सम्माणेमि, कल्लभ्राणं ।  
मगलदेवयं चेइय पज्जुवासामि मत्यएण वदामि ।

(३)-सम्यक्तव मंत्र ।

अरिहंतो मह देवो जाव जीवाय सुसाहू सुगुल्लण ।  
जिण पएणत्त तन्त एय सम्पत्त मगाहिय ॥१॥  
पचिंदोय सवरणो तह नव विह वम्भचेर गुत्ति धरो ।  
चठविह कसाय मुक्कोइय अट्टारस्स गुणोहिं मंजुत्तो ॥२॥  
पच महव्वयजुत्तो, पचविह आयाए पालण समत्थो ।  
पंचसमिओ त्तिगुत्तोइय छत्तीस गुणो गुरू होई सो गुरू मज्ज ॥३॥

## (४)—मार्ग पाप निवृत्ति मंत्र ।

इच्छा कारेण संविसृष्ट भगवन् इरिया, वरिया पठित्तमामि ।  
 इच्छा इच्छामि पठित्तमामि, इरियावरिया, विराहवाप ।  
 गमणागमये पात्रकवामये वीरककमणे इरियककमणे ।  
 वसा वरिग पयग दग, मटीमककव, संताप्ता सवकमणे ।  
 जे मे वीना विराहिया पठित्तिय वेरिया तेहिया, वरिया, ।  
 पठित्तिय अमिहया वरिया विसिया संघाहया संघरिया, ।  
 परियाविया विद्यामिया वरिया ठाय, वरिय संघमिया ।  
 वीरियावर येविया वस्त मित्तमामि दुककट ॥

## (५) ध्यान-स्तुति मंत्र—

तस वरि करयेण पापच्छित्त करयेण, विसोही करयेण ।  
 विसवली करयेण पापक कम्मया निग्पायणहाव ठामि वरिसमा ।  
 त्व वससियेण विससियेण वरियेण वरियेण वरियेण ।  
 वरियेण वरियेण वरियेण, ममविय, विसगुच्छाय सुहमेहि अगसंवाहेहि ।  
 सुहमेहि वेक संवाहेहि सुहमेहि विदी संवाहेहि एव माहवहि ।  
 अमारोहि, अमनो अमिरावियो, दुकमेअवसयो वाव अरिहंत्य ।  
 भगवताणं नमोकारेणं नपारेमि ताव अयं ठायोणं मोयेणं ।  
 म्भयोणं अप्पासं बोसरामि ॥

## (६)—अरिहंत स्तुति मंत्र ।

जोगत्स वरियोपारे, वम्म वित्थपरे विये ।  
 अरिहंते विसहं वरिसरि वेवली ॥१॥  
 वसम मवियं व वग्ने संभवममिंवर्यं व सुमई व ।

पउमपह सुपास जिण च चन्दपहं वन्दे ॥२॥  
 सुविहिं च पुष्कदेत, सियल सिज्जस वासुपुज्ज च ।  
 विमल मणत च जिण धम्म संति च वन्दामि ॥३॥  
 कुंथुंअरच महिन्न वन्दे, मुणिसुव्वय नमि जिण च ।  
 वन्दामि अरिहेनेमि पास, तह वद्धमाण च ॥४॥  
 एवमए अभित्थुआ, विहूय्यरयमला पहीणजरमरणा ।  
 चवविसंपि जिणवरा, तित्थयरामे पसीयतु ॥५॥  
 कित्थिय वन्दिय महिया जेए लोगस्स उत्तमा सिद्धा ।  
 आरुगवोत्तिभ, समाहिवरमुत्तमदिंतु ॥६॥  
 चन्देसु निम्मल चरा आइच्येसु अहिय पया सयरा ।  
 सागरवग्गभीरा सिद्धा, मिट्ठिमम दिसन्तु ॥७॥

(७,-सामायिक ग्रहण मंत्र ।

करेमि भन्ते सामाइयं सावज्जं जोग पच्चक्खामि जावनियम मुहूर्त्तं ॐ  
 पञ्जुवासामि दुविह तिविहेण, नकरेमि, नकारेवेमि, मणसा, धायसा ।  
 फायसा तस्स भन्ते पडिक्कसामि, निन्दामि, गरिहामि, अप्पाणं  
 बोसिरामि ॥

(८)-अरिहंत सिद्ध स्तुति मंत्र ।

णमोत्थुणं, अरिहताण, भगवताण, आइगराण, तित्थयराण ।  
 सयसवुद्धाण, पुरीसोत्तमाण, पुरिसमिहाणं पुरिसवरपु ङरियाण, ।  
 पुरिसरगघहत्थीण, लोगुत्तमाण, लोगनहाण, लोगहियाण

\*जितनी सामायिक करनी हों उतने मुहूर्त्त कहे जैसे १ करनी है,  
 वो मुहूर्त्त १ बोले ।

लोमरहस्यार्थं लोमपञ्चोष्मरारणं अभयद्वयार्थं बन्धुद्वयार्थं, बन्धाद्वयार्थं  
 सरस्वत्यार्थं बीजवृत्त्यार्थं बोद्धव्यार्थं धम्मवृत्त्यार्थं धम्मवेसपार्थं  
 धम्मनायगार्थं धम्मसारणीयां धम्मर वावरं बन्धुवृत्त्यार्थं  
 बीजोत्थार्थं सरस्वगृहपट्टा अपट्टिद्वयवर्णार्थं वसुधवृत्त्यार्थं ।  
 विष्णु वृत्त्यार्थं विद्यार्थं, वाचवृत्त्यार्थं, विष्णुवृत्त्यार्थं तारवृत्त्यार्थं पुत्रवृत्त्यार्थं ।  
 बोद्धव्यार्थं मुच्यार्थं मेघवृत्त्यार्थं सम्बन्धवृत्त्यार्थं सम्बन्धवृत्त्यार्थं सिद्धवृत्त्यार्थं  
 मरुतवृत्त्यार्थं मन्त्रवृत्त्यार्थं मन्त्रावाहम पुण्यावृत्त्यार्थं सिद्धि गद्द नामधेयं ठायं  
 सप्तवृत्त्यार्थं नमो विद्यावृत्त्यर्थवृत्त्यार्थं ॥

### (६)—सामायिक पान का र्थ ।

नमो सामायिक ऋ के विषय जो कोई अविचार लगा हो तो  
 मैं आज्ञोर्ध्व मन बचन कथा का कोटा योभा करताया हो सामायिक में  
 समझा न करी हो बिना पूछ पूरी हो, इस मन के इस बचन के बाद  
 कथा के इन वृत्तियों में से जो कोई दोष पाप लगा हो तो उस  
 मिच्छामि दुष्कृत् ।

### सामायिक करमे की विधि ।

प्रथम स्थान आसन रजोहरकी मुख बस्त्रिभ्य आदि की प्रति  
 ज्ञेयता करके आसन विक्रमे । फिर मुख पर मुखपत्रिभ्य बांधकर  
 मुखि स्थापन न हो तो पूर्व भा उत्तर दिशा की ओर मुख करके भी  
 सीमंथर भगवाम् स । बन्धन-पूषक सामायिक करने की आज्ञा सेवे ।  
 फिर ।सम्यक्त्व सूत्र॥ पढ़ने के बाद ।हामना गतव पाप नित्युत्ति सूत्रा।  
 पढ़कर ।।भ्यान ह्युत्ति सूत्र॥ बाँधे । इसक पश्चात् परिहृत स्तुति सूत्र॥  
 का ध्यान करे तथा नया परिहृतव्यं कह कर ध्यान पूर्ण करे । फिर

अरिहत स्तुति सूत्र ऊचे स्वर से बोलाकर, ॥सामायिक प्रहरण सूत्र॥ से सामायिक लेवे । तत्पश्चात् आसन पर बैठ बाया घुटना खड़ा कर हाथ जोड़ सिद्ध अरिहत स्तुति सूत्र॥ दो बार पढ़े । दूसरी बार ॥ठाणं संपा-  
त्रिऊ कामाण॥ बोलना चाहिए ॥ पश्चात् सामायिक काला पूर्ण होने तक ज्ञान ध्यान आदि शुभ क्रियाओं में समय बिताना चाहिए ।

॥-सामायिकः पारने की विधिः ॥

प्रथमा गमन पाप-निवृत्ति सूत्र से लेकर ध्यान तक समस्त पूर्वोक्त क्रियाएँ करे । फिर दो बार उसी प्रकार से सिद्ध अरिहत स्तुति सूत्र पढ़े । पश्चात् ॥ सामयिक पारन ॥ सूत्र पढ़े । फिर तीनवार मंत्र नवकार का उच्चारण करके सामयिक पूर्ण करना ।

मंत्र सथारा धारण करने का ।

आहार शरीर उपधि, पचक्खुं पाप अठार ।

मरण पाऊं तो वो सिरे जीऊ तो अगार ॥

विधि—सथार पारन हो ? तो तीन बार परमेष्टि मंत्र पढ़कर पारना चाहिए ।

सवर लेने का मंत्रः—

द्रव्य से पाच आश्रव सेवन करने का पञ्चमक्षण,

क्षेत्र से यावत् क्षेत्र प्रमाण, काल से यावत् काल प्रमाण

भाव से उपयोग सहित गुण से निर्जरा के हेतु दुविह तिविहेण न करेमि नकारवेमि, मनसा वयसा कायसा तस्स भते पडिक्कमामि निन्दामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि ।

विधि—सवर लेने से प्रथम ७ बार परमेष्टि मंत्र को पढ़ना चाहिए और पारने के लिए ६ बार पढ़ना चाहिए ।



पौष ऋतु ग्रहण करने का मंत्र ।

म्यारहवां पौष ऋतु अक्षय्यं पाणं कर्तुं साहसं चारुं आहारो  
 का पञ्चकन्यन अर्धम सेवन का पञ्चकन्यन मन्त्रा यथा विज्ञेयं का  
 पञ्चकन्यण अमुक मंत्रं सुबल का पञ्चकन्यन शास्त्र सुराभारिक  
 सायज्ज ओम का पञ्चकन्यन काच अहोरत्त पञ्चुवासावि दुर्बिह  
 विविहेयं न करेमि न कारभेमि मणुसा वायसा अयसा वस्म भति पदि  
 कङ्गामि निम्पामि गरिहामि अण्वायं बोसिरामि ॥

पौष ऋतु पारने का मंत्र ।

म्यारहवां पौष ऋतु का पंच अक्षय्य अण्वायन्वा न  
 समस्यरिक्त्वा तंवा ते अण्जोक्तं अण्वादिहेदिए दुष्पदिहेदिए  
 सेजा संचारय अण्मन्त्रिए दुष्पमन्त्रिए सेजा संचारय  
 अण्वादिहेदिए दुष्पदिहेदिए अण्वा पारत यथ मूमि  
 अण्मन्त्रिए दुष्पमन्त्रिए अण्वा पारतय मूमि  
 पौसहोवामस्तसम्म अण्वापारतयाप वस्म मिरुवामि दुर्बुह ।

सब प्रन्वकन्यन सेन का मंत्र ।

द्वैप गुरु वस की साड़ी से (वस्तु का नाम) अण्मोत परियोग  
 पञ्चकन्यमि अण्वायन्वा भोगेयं अहसा गारेह महत्तरायगारेयं  
 बोधिरामि ॥

सर्व पञ्चकन्यन पारने का मंत्र ।

अपरोक्त किसी भी पञ्चकन्यण का पारने के समय ही तो इस  
 पाठ को बहना । समंअण्मेयं न अक्षयं न पाक्षयं सोक्षयं न विरिबं  
 न किदियं न अण्वादिबं आण्वाप अण्वापारिता न भवत् अण्वन भवत्

तस्य मित्त्रामि दुक्कडं । यह मत्र पढे फिर पच परमेष्ठि नवकार  
पढकर पञ्चक्याणं को पूर्ण करे ।

### दया व्रत लेने का मंत्र ।

रुग्ण सूरे छ्ज्जी वणी काय विराहणाण, पच सब्बदाराणं वा  
पञ्चाक्खामि दुबिह तिप्पिहेण न करेमि न वारवेमिमणसा वयसा कायसा  
तस्स भंते पडिक्कसामि निन्दामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि ।

### २४ तीर्थ करो के नाम

- |                      |                         |
|----------------------|-------------------------|
| (१) श्री ऋषभदेवजी    | (१३) श्री विमलनाथजी     |
| (२) ,, अजीतनाथजी     | (१४) ,, अनन्तनाथजी      |
| (३) ,, समप्रनाथजी    | (१५) ,, धर्मनाथजी       |
| (४) ,, अभिनन्दनजी    | (१६) ,, शान्तिनाथजी     |
| (५) ,, सुमतिनाथजी    | (१७) ,, कुशुनाथजी       |
| (६) ,, पद्मप्रभुजी   | (१८) ,, अरहनाथजी        |
| (७) ,, सुपाश्रनाथजी  | (१९) ,, महिषनाथजी       |
| (८) ,, चन्द्रप्रभुजी | (२०) ,, मुनिसुव्रतनाथजी |
| (९) ,, सुविधिनाथजी   | (२१) ,, नेमिनाथजी       |
| (१०) ,, शीतलनाथजी    | (२२) ,, अरिहनेमिनाथजी   |
| (११) ,, श्रेयासनाथजी | (२३) ,, पार्श्वनाथजी    |
| (१२) ,, वासु पूज्यजी | (२४) ,, वर्द्धमानजी     |

### श्री विहरमानों के नाम ।

- |                           |                           |
|---------------------------|---------------------------|
| (१) श्री श्रीमधिर स्वामी, | (३) श्री घाटुजी स्वामी,   |
| (२) श्री पुनमदिर स्वामी,  | (४) श्री मुघाटुजी स्वामी, |

- |                            |                              |
|----------------------------|------------------------------|
| (५) श्री सुबाह स्वामी      | (१३) श्री बन्धुबाहु स्वामी   |
| (६) श्री स्वयंप्रभु स्वामी | (१४) श्री सुबंग स्वामी,      |
| (७) श्री ऋषभानंदन स्वामी   | (१५) श्री ईश्वर स्वामी       |
| (८) श्री अनंतवीर स्वामी    | (१६) श्री वीरसेन स्वामी      |
| (९) श्री सुरप्रभु स्वामी,  | (१७) श्री मेघप्रभु स्वामी,   |
| (१०) श्री विशाखधर स्वामी   | (१८) श्री महाप्रभु स्वामी    |
| (११) श्री ब्रह्मधर स्वामी  | (१९) श्री देववद्य स्वामी,    |
| (१२) श्री बन्धुजन स्वामी   | (२०) श्री अक्षितवीर स्वामी । |

### ११ रासपरी के नाम ।

- |                              |                         |
|------------------------------|-------------------------|
| (१) श्री इन्द्रमूर्ति श्री   | (७) श्री मौनपुत्र श्री  |
| (२) श्री अग्निमूर्ति श्री    | (८) श्री अक्षयित श्री   |
| (३) श्री वायुमूर्ति श्री     | (९) श्री अचल मूर्तिश्री |
| (४) श्री विगतमूर्ति श्री     | (१०) श्री मेघार्थ श्री  |
| (५) श्री सुप्रभा मूर्ति श्री | (११) श्री प्रसास ।      |
| (६) श्री मण्डितपुत्र श्री    |                         |

### वर्ग सुच ।

ब्रह्म जग जीव बोधि विद्याधरो जग गुरु जगाम्बो  
जगत्या हा जग वंभू ब्रह्म जगपिषा महा सर्वेश ॥१॥

ब्रह्म सुधाम्यं पमबो पितृवदाम्यं अपच्छिमोत्रयह ।

ब्रह्म गुरु जगाम्यं ब्रह्ममह्यं महावीर ॥२॥

मह संख बगुच्छोपगस्त मह श्रियास्त बोरस्त ।

मह सुप्रभु नमस्तियस्त मह पुवरयस्त ॥३॥

गुह्य मबद्यगइय सुपरक्य मरिच, इंसय विमुक्तत्वागा ।

सधनगर भद् ते अखड--चारित्तपरगा ॥४॥

सजम तव तु वारयस्स, नमोसम्मत्त पारियहन्नस्स ।

अण्हिचक्कसजओ, हो उसया सघचक्कस्स ॥५॥

भद् सील पडागू सियस्य तव नियम तुरत जुत्तस्स ।

सजरहस्स भगवओ, सज्जायसुनदि घोसस्स ॥६॥

कम्मरय जलोह विण्णियस्स, सुयरयणदीह ।

नालस्स पचमह्वय थिर कण्णियस्स गुण केसरालस्स ॥७॥

साधग जणमहुयर परिवुद्धस्स, जिण मूर तेय दुद्धस्स ।

संघ पठमस्सभद्, समण गण सहस्स पत्तस्स ॥८॥

वि सयममयलच्छण, अक्रिय राहु मुहु दुद्धरिस निच्च ।

जयसघ चद् निम्मल, सम्मत्त विमुद्ध जोएहागा ॥९॥

परतिथिय गह यद् नास गस्त तव ते दित लेस्य ।

नाणुज्जो यस्स जए भद् दम सउ सूरस्स ॥१०॥

भद् धिइवेना परिगयस्स सज्जाय जोग मगरस्स ।

अक्खोहस्स भगवओ, सघ समुदस्य रूदस्स ॥११॥

गुण रयणुज्जल कडय सील सुगन्धि तव मंढि उद्दस्स ।

सुय धारस सिहर, सघ महामदर वदे ॥१२॥

निव्वुइयहसासणं, जयइ सया सव्व भाव ।

देसणय कुसमय मय ना सणयं, जिण्णिदवर वीर मासणय ॥१३॥

नमि ऊण असुर सुर गरूल भूयङ्ग परिवन्दिए ।

गय किले से अरिहे सिद्धाय रिय उवज्जाय सव्वसाहूण ॥१४॥

चइत्त भारहंवास, चक्क वट्टी महि ढिडओ ।

सन्ति सन्ति करे लोए पत्तो गई मणत्तर ॥१५॥

द्वेष शस्त्रं गंधर्वा मकरं रक्तं स विजय ।

बंभवारि भर्मसति बुधवरं मे वर्ति ते ॥१६॥

एस धम्मे पुणे त्रिभुवे सामए त्रिछुवेसिए ।

सिद्धा सिम्हसे चाणोळं सिम्हिस्सति तहापरे ॥१७॥

ग्रह-शान्ति —

मह बराधो में त्रिसको सूर्ये ग्रह हो, वह निम्नोक्त मंत्र पूर्व विरा संमुख बैठ कर ७ जाप करे काष्ठ रंग की माळा से ।

(१) ॐ ह्रीं श्रीं धमं चध प्रमवेमम ग्रह शान्तिं कुव ९ स्वाहा ।

मह बराधो में त्रिसका चन्द्र ग्रह हो वह निम्नोक्त मंत्र बत्तर विरा संमुख बैठ १६ जाप करे सफेद रंग की माळा से ।

(२) ॐ ह्रीं श्रीं नमश्चन्द्र प्रमवेमम ग्रह शान्तिं कुव ९ स्वाहा ।

मह बराधो में त्रिसको मंगल ग्रह हो वह निम्नोक्त मंत्र पूर्व विरा संमुख बैठ ८ जाप करे काष्ठ रंग की माळा से ।

(३) ॐ ह्रीं श्रीं वासु पूज्य प्रमवेमम ग्रह शान्तिं कुव ९ स्वाहा ।

मह बराधो में त्रिसको बुध ग्रह हो वह निम्नोक्त मंत्र पूर्व विरा संमुख बैठ १ ०० जाप करे पीले रंग की माळा से ।

(४) ॐ ह्रीं श्रीं मम शान्तिं व्याज प्रमवेमम ग्रह शान्तिं कुव ९ स्वाहा ।

मह बराधो में त्रिसको शुक्र (शुद्धत्वति) ग्रह हो वह निम्नोक्त मंत्र बत्तर विरा संमुख बैठ १३ जाप करे पीले रंग की माळा से ।

(५) ॐ ह्रीं श्रीं नमो महावीर प्रमवेमम ग्रह शान्तिं कुव ९ स्वाहा ।

मह बराधो में त्रिसको गुरु ग्रह हो वह निम्नोक्त मंत्र पूर्व विरा संमुख बैठ ११ जाप करे सफेद रंग की माळा से ।

(६) ॐ ह्रीं श्रीं नमो शुक्तिविश्व प्रमवेममग्रह शान्तिं कुव कुव स्वाहा ।

ग्रह दशाओं में जिसको शनि ग्रह हो वह निम्नोक्त मंत्र उत्तर

दिशा समुख बैठकर २३००० जाप जपे श्याम रंग की माला से ।

(७) ॐ ह्रीं श्रीं नमो मुनिसुव्रत प्रभवे मम ग्रह-शांतिं कुरु २ स्वाहा ।

ग्रह दशाओं में जिसको राहु ग्रह हो वह निम्नोक्त मंत्र पूर्व दिशा समुख बैठकर १८००० जाप जपे-श्याम रंग की माला से ।

(८) ॐ ह्रीं श्रीं नमोऽरिनेमिनाथ प्रभवे मम ग्रह-शांतिं कुरु २ स्वाहा ।

ग्रह दशाओं जिसको केतु ग्रह हो वह निम्नोक्त मंत्र पूर्व दिशा समुख बैठकर १७००० जाप जपे पीले रंग की माला से ।

(९) ॐ ह्रीं श्रीं नम पार्श्व नाथ प्रभवे मम ग्रह-शांतिं कुरु २ स्वाहा ।

(नोट) जो नव ग्रह के जाप बतलाए हैं वे सब जपे तथा ५ तथा ७ दिन में ज्यादा से ज्यादा १ दिन में पूर्ण कर लेना चाहिए ।

जैनाचार्य आचार्य साम्राट पूज्य श्री सोहनलालजी की स्तुति ।

हर्ष मन हुआ दर्श को करके श्री आचार्य सोहनलालजी के ॥टेका॥

आपका नाम है सुखकारी, होवें नाश कष्ट दुःख भारी ।

जाऊं चरण कमल बलिहारी श्री आचार्य सोहनलालजी के ॥१॥

गुण ग्राही ओर थे ज्ञाना के सागर, कर गये जिन धर्म उजारगर ।

धारू चरण शरण में आकर, श्री आचार्य सोहनलालजी के ॥२॥

तप तो करते अप्ररपार, जिसका लहूँ ना पारा वार ।

स्मरण से होते अघ नाशनहार, श्री आचार्य सोहनलालजी के ॥३॥

सच की करी सदा प्रतिपाल, चतुतीर्थ कर गये निहाल ।

वदोपद पकज गुणमाल, श्री आचार्य सोहनलालजी के ॥४॥

भारत के सच मुनिराज, बीच शोभित होवे ज्यू मृगराज ।

ध्यान कर लीना है आज, श्री आचार्य सोहनलालजी के ॥५॥

जब थे अमृतसर संभार, सदा बसत खिलाजार ।

मिथकर तुम नाम बापो सुखकर, श्री आचार्य सोहनदासजी के ॥६॥

श्री पूज्य गुरु प्रभाषे मिथानि अमर आनन्द बाबे ।

माम डेत रोम रोम हरवाई, श्री आचार्य सोहनदासजी के ॥७॥

यंत्र २७

१०	८	६
१३	१२	९
४	७	१६

मंत्र—कमो ॐ श्रीगणेशाय नमः प्रम सुविधि विमल बासु पूज्य अश्विन  
अभिलम्बन सुप्राथ शक्ति मायाय नमः अक्षर अश्विन अक्षर नमः कुं  
कुं ल्वाहा ।

विधि—इस मंत्र को अक्षर से लिख कर बीच के से सब प्रकार  
रोम अक्षर शक्ति होती ।

यंत्र २९

४	८	६
१२	७	९
५	६	१

मंत्र—कमो अक्षर श्री श्री श्री अभिलम्बन अक्षरप्रम सुविधि बासु  
पूज्य सुप्राथ अश्विन सुमति पञ्चम शक्ति मायाय नमः अक्षर नमः  
कुं कुं ल्वाहा ।

विधि—इस मंत्र को अक्षर से लिखकर सुप्राथ अक्षर के अक्षर के  
लिखाये अक्षर शक्ति है ।

प्रातः व्याख्यान के बाद में पढ़ने का स्तवन ।

षट्द्रव्य भिन्न २ कहा जिनवर आगम सुनत व्याख्यान ।

पचास्ति काया नव पदार्थ पंच भाष्या ज्ञान ।

चरित्र तेरह कहा जिनवर ज्ञान दर्शन प्रधान ।

जो शास्त्र नित्य सुनो भव्य जन आन शुद्ध मन ध्यान ।

चौबीस तीर्थंकर लोक माही तरन तारन जहाज ।

नव वासु नव प्रति वासुदेव वारह चक्रवर्ती जान ।

चार देशना दी श्री जिनवर क्रिया जो पर उपकार ।

पांच अणुवन चार शिक्षा तीन गुण व्रत धार ।

पाच सवर जिनेश्वर भाष्या दया धर्म प्रधान ।

और कहा लग करूँ वर्णन तीन लोक प्रमाण ।

सुनत पाप शिनाश जायें पायें पद निर्वाण ।

देव वैमानिम माहे पदवी कहिए जो पच प्रधान ।

विघ्न हरण मगल करण धन्य श्री जैन धर्म ।

जिन सिमरिया पातक टले दूरे आठों कर्म ।

धन्य साधु धन्य साध्वि धन्य श्री जैन धर्म ।

जिन सिमरियां सकृद टले दूटे आठों कर्म ।

मध्याह्न के व्याख्यान के पश्चात्-पढ़ने का स्तवन ।

तीर्थ कर्ता दुःख हर्ता इन्द्र सारे सेव हैं ।

त्रैलोक्या स्वामी मोक्ष गामी सो हमारे देव हैं ।

महाव्रत धारी आत्मातारी जीव षट् प्रति पालता ।

गुरु देव मोटा लिया जी ओटा दुःख सगले टालता ।

सब जीव रक्षा यही परीक्षा धर्म जिनकी मानिये ।



जहाँ होय हिंसा नहीं संशय अघर्म बोधी पीडानिबे ।

वे तीन रत्ना कीबो पत्न्य दृढ चित्त सुधारिये ।

कहे बरत सुना मोटा अचनो के सार थे ।

सक साह स्वाम्य साह कर जो निज हित आयिबे ।

प्रभु शस्य लोह बर्म सेहं ताहीं सो कल्याण है ।

श्री चौबीस विनेशरों के शिष्यों के नाम ।

श्री विज शिष्य ठारो मुझे है हमारी स्वामी प्रार्थना हमारी ।

श्री अक्षयसेन सिद्धसेन साह मज बरत नाम आत्मन्वकारी ।

श्री अमर सुन्दर विरम को ध्याऊँ बीज बाण हैं विचारी ।

श्री आत्मन्व गोस्तुभ सुधम नामु श्री मंदिर करभेवर अचकारी ।

श्री आरिष्ट अक्षयुष शांति विनन्वगे संमह म है गुणकारी ।

अभिनव इन्द्र क म सु म पदे बाहु बरवत मुनि सुबकारी ।

आर्य विम इन्द्र मूर्ति मन्मथ, प्रथम शिष्य महा विजवकारी ।

श्री चौबीस साठियों का स्तोत्र ।

जाही ने अक्षयु श्याम अरि सुबकारी ।

अमिता ने काशमपी, रक्षि लोम अक्षिमारी ।

सुमना बाहुनीपुत्र सुबसा बारवी-सेव ।

धारवी वरवी-परा पदा शिवा अचकोष ।

सुमी अक्षय बली रक्षिता बन्धु निहास ।

पुष्पति अमीसा हरेव पद्मवी गुणमणि जात ।

पुष्पा पूजा बन्धन बाधक प्रथम शिष्यापी ध्यान ।

बीबी सो विननी वचन बुद्धबंती हैं नाम ।

## श्री गौतम स्वामीजी का मंत्र ।

ॐ नमो भगवश्चो गौयमस्स सामिस्स सिद्धस्स बुद्धस्स अस्सीण  
महाणस्स अणाय २ पूरयमम चितिय सफले कुरु २ ऋद्धिं वृद्धिं सुख  
सोभारय तुष्टिं पुष्टिं जय विजयं कुरु २ स्वाहा ।

## गुरु मंत्र ।

ॐ एमो सव्व सिद्धण सव्व धम्म देवणां सव्व बुद्धाण असि आरसा  
अर्हन् नम. स्वाहा । विधि—गुप्त है गुरुमुख से धारण करे ।

## सर्व भय निवारण का मंत्र ।

पिसो भगवाश्चरहा सम्म सबुद्धो विज्जाचरण सपत्नी सुगतो  
लोक विन्दु अनुत्तरो पुरुषदम सारथीसात्थादेवाना च मानवाना च  
बुधो भगवाजय धम्मा हेतु प्रभावाते सा तथागतो अवचते । साचयो  
निरोधो एव वादी महासमणो, महासमणो ।

अर्थ विधि—अनेन मन्त्रेण २१ बार जपित्वा उपरि तन वस्त्रं  
चले प्रन्थी बंधये तारणे सर्व शास्त्रा शस्त्र निवारणी जप तो वधन,  
मुक्ते कारणे चौर प्रबहण बुद्धन रायसिंह न्याध सर्पादि सर्वो ब्रह्म  
धारण पटति सिद्धोयं मन्त्रं दृष्ट प्रत्यय प्राप्ति ।

## विजय मंत्र ।

ॐ नमो पद्मावति पद्म नेत्रे पद्मासने लक्ष्मी दायिनी वाद्यापूर्णी-  
जप कुरु २ सिद्धि कुरु २ ऋद्धि राजा प्रजा मोहे मोहे स्वाहा ।

विधि — २१ धार गाठ डीजे भगवै विजय होय कार्य सिद्धि होई  
१० = नित्य जापे प्रात काल में सूर्य उदय होने से पहले ।

## अविष्य ज्ञान का मंत्र ।

ॐ नमो सामन्न के पक्षिणं त्यादा ।

नित्य १४ क्षाप करने से पवित्र काक का हान होता है इससे  
मीन सूक्ष्म से प्रथम पढ़ना चाहिए ।

शुभाशुभ हानने का मंत्र ।

ॐ ह्रीं महास्वी स्वाहा ।

विधि नित्य प्रति दिन नव मात्रा मीन करके पढ़ना

श्री उपसर्ग हर स्तोत्र ।

ब्रह्मणा हरं पास पास ब्रह्मि कर्म पण मुष्कं ।

विसहरविसनिघ्रासं संग्रह कर्माय आवासं ॥१॥

विसहरापुराणि मय कबठे पारेह जो सबा मसुधो ।

वसस गह रोग मारी दुद्रु बय अति ब्रह्मार्म ॥२॥

चिद्रुह दूरे मंठा दुष्कल्पयामोवि बहुपत्रो होये ।

पर तिरिय सुवि जीवा पावति न दुष्कल रोहार्ग ॥३॥

गृह सम्मर्त्त कन्दे विद्याकण्ठि कल्प पाप विष्मदिए ।

पावति अविगन्थं जीवा अपरमर्त्त ठासं ॥४॥

इय सजुषो महाबल मन्दिभार नि मरे

ता वैव विष्म बोधि भवे भवे पास विष्णु

विधि - श्री महा बाहु स्वामी

पैसे एक

का पाठ

१० बार दिन

दूर होय

परपटा

ॐ नमः

विष्णोर्ब

ब्रह्मर्त्त विष्णु

रोगात्त्र प्रणश्यन्ति, घात पित्त कफोद्भया ॥२॥

तत्र राज्य भयं नास्ति, यानि कर्ण उपान्तर्य ।

शाकिनी भूत चैवाला राक्षसा परा भवन्ति ॥३॥

ना काले मरण तस्य न च सर्वेण पश्यते ।

अग्नि चौर भय नास्ति, ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं क्लूं रीं ।

ॐ घटा कर्णो नमः स्तुते ठ ठ ठ म्गाहा ॥४॥

विधि.—प्रतिदिन प्रातःफाल लाल चन्दन की माला एक से इस स्त्रोत्र का पाठ शुद्ध पद में रिक्त तियों को छोड़के प्रारम्भ करना यदि माला जाप का समय न मिले तो ७ घार उत्तर दिशा में मुख करके साधक आचक्षते पढ़ें ॥

### श्री जिनेन्द्र स्तुति ।

जपता जिनेन्द्रं सभी विघ्न नाशे, जपता जिनेन्द्रं आनन्द प्रकाशे ।

जपता जिनेन्द्रं सभी सिद्ध कामं, जपता जिनेन्द्रं लक्षो मुक्ति ठामं ॥१॥

जपता जिनेन्द्रं सभी रोग भागे, जपता जिनेन्द्रं सदा ज्योति जागे ।

जपता जिनेन्द्रं महा कष्ट चूरे, जपता जिनेन्द्रं महा दुःख दूरे ॥२॥

जपता जिनेन्द्रं मिटे हैं उदामी, जपता जिनेन्द्रं कटे कर्म फामी ।

जपता जिनेन्द्रं मिले इष्टं योग, जपता जिनेन्द्रं अनिष्ट वियोग ॥३॥

नमूं श्री जिनेन्द्रं महा शांतिकारी, सभी ज्ञान धारीं आज्ञान परिहारी ।

नमूं तीर्थ नाथं महामति आवें, मिथ्यात्व मिटे दुर्मति दूर जावे ॥४॥

भजो वीतरागं तजो द्वेष राग, करो साधु सेवां लहोमोक्ष मार्ग ।

भजो वीतराग त्रियोग त्रि करण, मिटे रोगं शोकं जरां जन्म मरण ॥५॥

सम्यग्दृष्टि धारी कुट्टि विहारी, सभी कर्म का मैल दूर उतारी ।

नहीं मुक्ति दाता, बिना वीतराग, नहीं तारसी देव जो हैं सारोग ॥६॥

प्रभु भक्ति मारी हृदय में बसी है बूजा देव से शीति पूर मसी है ।  
 पत्नी बिनती करूँ हाथ जोड़े, तुम्हारी सदा भक्ति होवे बँठ सरे ॥१०॥  
 प्रभु माम लीजे सदा ही प्रमार्त निरपार आपार है तीर्थमार्य ।  
 सदा पाये बन्धु मैं बारी शरण आका समी भ्रम मेठा तुम्हीं से ज्ञान पाव ॥११॥  
 श्री महावीर स्वामी अरित्र औपाई ।

विमरूँ आदि विनेश्वर स्वामी, पठ १ के प्रभु अन्तर्बानो ।  
 सुर मर मुनि बन रटें गुरु दानी तुम्हीं रक्त जगत स विरते प्रणी ।  
 बोधाः—श्रीबीसवें विमरूँ श्री महावीर भगवान् ।

विमरूँ मैं बर्णन करूँ, मुनो सकल कर ध्यान ॥  
 श्री अरिहंत देव को बन्धु बारंबार, श्री बरु मय का कर्तुँ सुधार ॥  
 जो कुछ मुना म्हापारों से बरुमें कुछ जान ।  
 कविकर बर्णन करूँ मुनो सबै जनहित धन ॥

मित्र पुर धर्म प्रकम्प विद्या श्री महावीर स्वामी से ।  
 कर्म भूमि प्रभुजी की कुम्हळ पुर राजधानी ।  
 ज्ञान बँधी अश्व व घोत्री हुवे बरु मय स्वामी ।  
 विद्या सिद्धार्थ गुप बाठा विराडा देवी रानी ।  
 बड़े भ्रमता पत्नी बरुँ म को से म्हापारका मामी ।  
 बरुसे बरुकर धाप हुवे शूरवीर घोर स्वामी ।  
 ज्ञान से विचार स्वामी छूँ ठा समस्त जगत स्वामी ।  
 विद्या आचारमय से ज्ञान विद्या बरु बरुँ बीर प्रणी मे ॥१२॥  
 म्हापार विद्या से अरु करे श्री महावीर ।  
 छूँ ठा है जगत मुनिपो पत्नी बरुँ म तुम बीर ।  
 देवो मेहे आका करूँ तारने की वरुवीर ।

पिता मात कहैं मुनियो पुत्र प्यारे वर्द्धमान ।  
 अब तक जीवैं हम को गृहस्त ही में धर्म ध्यान ।  
 यही आज्ञा है हमारो पालो आवक धर्म महान् ।  
 यह क्या मन में विश्वास किया तजते हो रजधानी ने ॥१॥  
 माता पिता भ्राता जिनकी आज्ञा करी स्वीकार ।  
 तीस वर्ष तक पाला आवक धर्म शुद्धाचार ।  
 वर्षी दान देके फिर मुनिघत लिया धार ।  
 कर्म अरि को काटने को काया से तजी है प्रीत ।  
 बारह वर्ष तक अति कठिन परिपह जित ।  
 एक सम समझें स्वामी शत्रु जन ओर मित्र ।  
 फिर ब्रह्मज्ञान को पास किया उस दया धर्म दानी ने ॥३॥  
 केवल ज्ञान पाकर फिर दिया सत्य उपदेश ।  
 सत्य प्रकाशने को विचारे हैं प्रभु देश विदेश ।  
 हिंसा धर्म खण्डन कर दया कहते हमेश ।  
 आवक धर्म मुनि धर्म भाषा श्री भगवान् ।  
 पट्द्रव्य नव तत्त्वों का भिन्न २ भेद जान ।  
 प्राणीयों के जानने को आगम किया व्याख्यान ।  
 फिर सर्व सूत्रों पर भाषा किया सर्वज्ञ देव ज्ञानी ने ॥४॥  
 इन्द्रभूति अग्निभूति वायुभूति विगत जान ।  
 सुवर्मा मंडीपुत्र मौर्यपुत्र अकपित सर्व पंडित जान ।  
 अचल भ्राता और मैतार्य प्रभास सर्व श्रतमान ।  
 ग्यारह हीने वीर जी से चर्चा करमानी हार ।  
 छोड़कर गृहस्त फिर मुनि धर्म लिया धार ।

गवधर पवडी देके श्री बीर बीने दिये तार ।  
 चन्दनबाह दुःख मारो किया बंस देव सीधे पापीने ॥ १ ॥  
 बिरगठ बीरकरा सु बह स्वीरठ शिवराज ।  
 उदायन अर्धक शक्ति करी वरपूजन घाठो महाराज ।  
 बीर बीसे धर्म पाकर संजम सेकर साठे काज ।  
 श्रीरा देवकर पारकिये मेवकुमार अमय कुम्हार ।  
 सुबाहु कुमार ओर अतिमुक्ति दिखे ये तार ।  
 श्रीर कर्ष पाव देवियों को संजम देवकर किया उपकार ।  
 बहुतो का कार्य सप श्री अतिदूत देव की बानीने ॥ २ ॥  
 दशरथ मद्र नरेन्द्र ओर रामकी मद्र सेठ बाल ।  
 आरु कुम्हार आदिषो का बीर बीने दिया ज्ञान ।  
 रोडा ओर स्वन्दर तारे देकर दया धर्म दान ।  
 चौबह हजार मुनि किये आर्षा कृतीस हजार ।  
 एक लाख बमसठ हजार भावक किया अठ पार ।  
 तीन लाख भाविष्ये छिनी श्री बीर बीने ठेकार ।  
 छिद्र मोरुबाम बा बास किया तीव कर पद पापीने ॥ ७ ॥  
 आप ही के शासन में जैन मुनिबा को बाल ।  
 सफल साधु आर्षाये आप ही का पारि ब्यास ।  
 अथक ओर आदिषाये आप ही का बने मास ।  
 प्रथम बन्ध बीर स्वामी प्रमो निम्ब बस मान ।  
 प्रथियों के वारने का दिषी सत् ज्ञान दान ।  
 तीनों घोष हुय कर नमें कित्त बानुराम ।  
 प्रभु में कर्षोने दास किया ठाठे सेकक बानीने ॥ ८ ॥

## सर्व रक्षा मंत्र ।

ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं ऋषभशाति घृति कृति काति बुद्धि लक्ष्मी ह्रीं  
अप्रति चक्रीफट् चक्राय सहाय सत्य उपासत्य सर्व कार्य करी प्रभादेवी  
अपाराजितुं गूँठा ऊठा कर राज्य कलिफ वादेई भृगुद्वारिखुस्मरयति,  
ॐ ह्रीं खु चक्रेश्वरी तुम ममरक्षा कुरु कुरु सहाय अचल यति बनखरह  
रीखराय चरण बच्छेसहाय, नाखेक्षीण बहिनेक्षीण दहिणेक्षीण आगे  
पीछे होये, अचल यतिके ध्यावने विघ्न व्यापेन कोई ।

विधि—इसको त्रिकाल २७ पढ़ना सर्व प्रकार से रक्षा होवे ।

### प्रातः काल उठने से पूर्व मंत्र

श्री महावीर पहुँचे निर्वाण, श्री गौतम स्वामी पायों केवल ज्ञान ।

अशुभ हरण शुभ करण श्री शातिनाथ जी ।

शाति करो श्री शातिनाथ, सकट टालो श्री पार्श्वनाथ ।

### रात्रि सुते समय जपने का मंत्र

ॐ असि अउसाय नम अरिहंत भगवन्त सिद्ध साहु पारके  
निवाहु मैं ध्यान धरु तोरा तु पाप काट मोरा ॥





गणपत पक्षी बूके श्री बीर जीने दिखे ठार ।  
 चम्बलबाहू दुःख नारा किवा बंस देव सीधे पासीने ॥ ४४ ॥  
 बीरगठ बीरपरा सुजह स्वीरठ शिष्याज ।  
 बदायन भ्रमंर शांति कारी बरभूम आठों महारंज ।  
 बीर जीसे घरे पाकर संजम देकर साध काज ।  
 बीजा देकर पारकिपे मेवकुमार अभय कुमार ।  
 सुबाहु कुमार आर अतिमुक्ति दिखे ये ठार ।  
 बीर कई राज देवियों को संजम देकर किवा अपभार ।  
 नहुतो का कार्य करा श्री अतिद्वैत देव की बानीने ॥ ४५ ॥  
 ब्रह्मर्षि भद्र नरन्ध्र ओर शाही भद्र सेठ जान ।  
 भार्गवकुमार आदिहो का बीर जीने दिखे जान ॥ ४६ ॥  
 ठेका ओर स्वैरुव वारे देकर बवा बरमे दान ।  
 बीरह हजार मुनि दिखे आर्वा कृतीस हजार ।  
 एक काक बनसठ हजार आवक किया मत धार ।  
 हीन काक आदिभयें किमी श्री बीर जीने सेवारे ।  
 फिर मोक्षधाम जा पास किवा तीव कर पर पासीने ॥ ४७ ॥  
 आप ही के शासन में बीर-मुनिहो को जान ।  
 सकल साधु आर्षादि आप ही का धारें ध्यान ।  
 आवक बीर आदिभयें आप ही का बरमे नाम ।  
 धन्य धन्य बीर स्वामी बंसो मित्त बसुं दान ।  
 आदिहो के ठारने को दिखे साधु धाम धाम ।  
 हीनो बोग छुड़ कर नये मित्त कस्तुरमा ।  
 मनु में कर्मोंने रास किवा ठारो सेकक बानीने ॥ ४८ ॥

श्री मुनीमीशहिं नमामि, धर्मचन्द्र चद्रादिप्रभू जितं च ।  
 आदीश्वर नित्य बिलु, प्लपक श्री वर्द्धमान भुवने प्रसिध्दं ॥१॥  
 कुथुकलाधार मुनीशमे वंशातिं च सद्व्या न युत नरेश ।  
 मनतमाचार गुणैरनतसुपाश्व दैवच सुवर्ण काय ॥२॥  
 ह्युपोत तुल्य सुमतिं भवान्धौपाश्व जनाधार महिद्र पूज्य ।  
 नेमिमहिन जितमन्मथ च, श्री सुव्रतं सुव्रत मेवनित्यं ॥३॥  
 त्रिलोकनाथ विमल जिनेशपद्म प्रभु शुक्ल गुणो विलीन ।  
 प्रबोधकंचऽऽमिनंदनं चविशोभित सभवनामधेयं ॥४॥  
 ममामिनित्यं नमिऽऽत्म शक्त्या श्री मल्लिनाथ जिन माप्त मोक्षम् ।  
 श्री वासु पूज्यम्मुविदीप तुल्य श्री शीतला सौख्यद मेव शाक्तं ॥५॥  
 ससार सार सुविधिं सुवीर शङ्कार कयैश्चक्षितं विख्यातम् ।  
 तथैव पचाधिक विंशतिश्वर अरिच श्री श्रेयासजिन गुणाढ्य ॥६॥  
 पंचाधिकपण्डे समुद्भुवच यत्रजिनानाहि सुनामभ्येयै ।  
 ह्रींकार रूपत्रिशद पवित्रं लिख्यच्च तुच्चदि तथैवतस्य ॥७॥  
 इंद प्रधान पठत जनोयः स्तोत्र हिंसस्यैव सदानिधान माधार ।  
 भूतहि प्रमाथिनीपुविसत्सु देवैद्रप्रपूजितश्च ॥८॥  
 अनेन यंत्रेण धन प्रकीर्णं लभति नित्य मनुजा शुभत्तया ।  
 श्री वर्द्धमान क्यगुणोप्रशादऽऽदृष्युप्रसेनेन कृत्त विशुद्धी ॥९॥

卐 श्री जैन आरती 卐

तर्ज — जय जिन अरिहत प्रभु ?

जय जिनवर देवा स्वामी जय जिनवर देवा,  
 दास तुम्हारे मढे द्वारे पार करो सेवा ।

ॐ	ही	ही	हो	ही	ही	ही
ही	१५ ष	८ सि	१ षा	१४ व	१७ को	ही
ही	१६ सि	१४ षा	७ व	१ को	१३ ष	ही
ही	११ व	९ को	१३ ष	६ सि	४ षा	ही
ही	१ षा	११ व	१२ को	१२ ष	१ सि	ही
ही	१ को	१ ष	१५ सि	१८ षा	११ व	ही
मी	ही	ही	ही	ही	ही	८

श्री मुनीभीशाहिं नमामि, धर्मचन्द्र चद्रादिप्रभू जितं च ।  
 आदीश्वरं नित्य बिलु, पतपक श्री वद्ध मान भुवने प्रसिध्द ॥१॥  
 कुथुं कलाधार मुनीशमे वंशाति च सद्व्या न युत नरेश ।  
 मनतमाचार गुणैरनंतसुपाईर्व दैवच सुवर्ण काय ॥२॥  
 सुपोत तुल्य सुमति भवान्धौपाईर्व जनाधार महिद्र पूज्य ।  
 नेमिमहिन जितमन्मय च, श्री सुव्रत सुव्रत मेवनित्य ॥३॥  
 त्रिलोकनार्थ विमल जिनेशपद्म प्रभु शुक्ल गुणे विलोत ।  
 प्रबोधकचऽऽभिनदनं चविशोभित सभवनामवेय ॥४॥  
 नमामिनित्यं नमिऽऽत्म शक्त्या श्री मल्लिनाथ जिन माप्त मोक्षम् ।  
 श्री वासु पूज्यम्भुविदीप तुल्य श्री शीतला सौख्यद मेव शात्त ॥५॥  
 ससार सार सुविधिं सुवीर शङ्कार कथै अस्त्रितं विख्यातम् ।  
 तथैव पचाधिकं विशतिश्वर अरिच श्री श्रेयासजिन गुणाढ्य ॥६॥  
 पचाधिकषष्टे समुद्भुवच यत्रजिनानाहि सुनामध्येयै ।  
 ह्रींकार रूपविशद पवित्रं लिख्यच्च तुच्चदि तथैवतस्य ॥७॥  
 ईद प्रघान पठत जनोय स्तोत्र हिंसत्यैव सदानिधान माधार ।  
 मूर्तहि प्रमाथिनीपुर्विसत्सु देवैद्रप्रपूजितश्च ॥८॥  
 अनेन यत्रेण धन प्रकीर्णं लभति नित्य मनुजा शुभत्तया ।  
 श्री वर्धमान ह्यगुणेप्रशादऽऽदृषुप्रसेनेन कृत्त विशुद्धी ॥९॥

## 卐 श्री जैन आरती 卐

तर्ज—जय जिन अरिहत प्रभु ?

जय जिनधर देवा स्वामी जय जिनधर देवा,  
 दास तुम्हारे खडे द्वारे पार करो खेवा ।

ॐ जय त्रिनवर देवा, स्वामी जय त्रिमवर देवा ॥१॥

वसिष्ठ उषारण्य मंगल अरुण तारण्य सुककरी,  
विपत विदारण्य विघ्न निवारण्य केवल पनधारी ।

ॐ जय त्रिनवर देवा स्वामी जय त्रिमवर देवा ॥२॥

शो जन ध्यायेँ शिव सुख पायेँ विगरे अत्र छरेँ  
बन्ध मरण मय हटेँ कटेँ दुःख मुक्ति ठात्र बरेँ ।

ॐ जय त्रिनवर देवा स्वामी जय त्रिनवर देवा ॥३॥

वञ्चित पूर्ण अघदह परण्य अविचल अवतारी,  
पाप छाप संताप विनारी बुगदि बलहारी ।

ॐ जय त्रिनवर देवा स्वामी जय त्रिनवर देवा ॥४॥

शरणागत प्रसिपान बक्षु शरण्य गही तेरी ।  
कर बलया सेवक पर स्वामी अठो मय फेरी ।

ॐ जय त्रिनवर देवा स्वामी जय त्रिनवर देवा ॥५॥

दुख बुख बर बीर हरिहर बगवौन्दर स्वामी  
मळो के भावाक तुम्हीं हो निव अंतर्धामि ।

ॐ जय त्रिनवर देवा स्वामी जय त्रिमवर देवा ॥६॥

अबल अर्बल मय। पहिम मय अत्र अमर बामी ।  
तीबेकर अमर्बकर शर अत्प विदरामी ।

ॐ जय त्रिमवर देवा स्वामी जय त्रिनवर देवा ॥७॥

सुर नर मयक सवासनायक सुख गण आगारा  
'अमृत' परण्य शरुण्य गइ तेरी जाहे शिव छाय ।

ॐ जय त्रिनवर देवा स्वामी जय त्रिनवर देवा ॥८॥

## श्री जिन शासन पुष्पोद्यन के सदस्यों की नामावली

- शम्भूमन टकचन्द्र रोहतक मंडी
- धनराज तेलुरात नरवाणिया कैथल ( करनाल )
- भागमन कस्तूरीलाल जाखल मण्डी ( हिसार )
- उद्दिश्वर जैन रोहतक मंडी
- कालूराम भूरामल कालानौर ( रोहतक )
- मित्रमैन नोनिहालमिह जैन भिवानी ।
- रामजीलाल गौपीचन्द्र जैन तोसाम ( हिसार )
- धन्नेराम भगवानदास जैन सुलतानपुर लोधी ( पैम्पू )
- तेलूराम यन्ना भक्त जैन रतिया ( हिसार )
- वनवारीलाल केशोराम जैन रतिया ( हिसार )
- चन्नीमल प्यारालाल जैन रतिया ( हिसार )
- मोलखीराम विहारीलाल जैन रतिया ( हिसार )
- भक्तगराम रूपचन्द्र जैन रतिया ( हिसार )

## श्री जिन शासन पुष्पोद्यन के पुरुष

- |                                  |     |
|----------------------------------|-----|
| श्री जिनेश्वरानृपर्वि            | 1)  |
| महाचक्रारी पेंसठिया स्तौत्र विधि | 1)  |
| पंच परमेष्टि दिग्दर्शन प्रथम     | 1)  |
| पंच परमेष्टि दिग्दर्शन दूसरा भाग | =)  |
| श्री वीर चारित्र                 | 1=) |
| वर्म बाणी                        | 1=) |
| श्री देव बाणी                    | १1) |

प्राप्ति स्वान् ।

श्री निरामनपुष्पोत्थन-

पंथी-गोपीचन्द्र जैन टाईप स्कूल

बिचला बाजार मिशानी (दिसाह)

मास्टर

सुमित्रा ११

